Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष: २४; अंक: ३६७; १६ से ३१ अक्तूबर, १९८४

▣ दीपावली पर विशेष

भारतीय महिला कथाकार अंक

कहानियां

9 त्रिशूल (पंजाबी) : अमृता प्रीतम
12 कुनू : मृणाल पांडे
18 महबूब (उर्दू) : इस्मत चुगताई
21 रास्ता : शशिप्रभा शास्त्री
27 मैरी हैड अ लिटिल लैंब : (मराठी) : निर्मला देशपांडे
35 भूख : चित्रा मुद्गल
40 अंतिम प्रहर की महफिल : (बंगला) : कणा सेन
50 कल कहां जाओगी (डोगरी) : पद्मा सचदेव
55 बहाव : अरुणा सीतेश
59 टुकड़ा-टुकड़ा संबंध : अनीता मनोचा
64 अरविंद चालिहा परिवार का गांव भ्रमण : (असमिया) चित्रलता फुकन
68 रिश्ता शहर से : चमेली जुगरान

▣ **उपन्यास अंश**

70 पान बहार : गोविंद मिश्र

साक्षात्कार

46 मेरी दिलचस्पी का विषय यात्रा है, पड़ाव नहीं : मृदुला गर्ग से दिनेश द्विवेदी की बातचीत

लघु रचनाएं

11 सत्यमेव जयते : उषा भास्कर राव
14 दो मेंढक : सुधा उपाध्याय

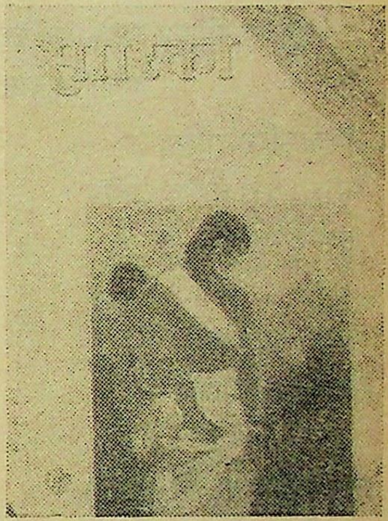

आवरण : हरिपाल त्यागी

22 गांठ बांधी बातें : नमिता
31 हकदार : कल्पना आंचलिया
33 ग़ज़ल : ऋचा सत्यार्थी
37 ग़ज़ल : मीनाक्षी
39 अप्रत्याशित : कुमार क्रांति
42 सिर्फ अपनों के लिए : किरण अरोड़ा
51 शपथ का पालन : महादेवी वर्मा
56 संरचना : खलील जिब्रान
72 उपन्यास और टेलीविजन : नथाली सर्रात
▣ विभिन्न पृष्ठों पर चलते-चलते एवं व्यंग्यचित्र

स्थायी-स्तंभ

7 आपकी बात

सहायक संपादक
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
सज्जाकार
सुमीता

● संपादकीय पता : सारिका, 10, दरियागंज, नयी दिल्ली—110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय भाषाओं का उत्कृष्ट साहित्य हिन्दी में उपलब्ध

ट्रस्ट की "आदान-प्रदान" पुस्तक माला के अंतर्गत प्रमुख भारतीय भाषाओं की साहित्यिक कृतियां सस्ते दामों पर पाठकों को उपलब्ध कराई जाती हैं.

"आदान-प्रदान" पुस्तक माला के अंतगत प्रकाशित कुछ चुनी हुई पुस्तकें :

चिक्कवीर राजेन्द्र	श्रीनिवास (मास्ति वेंकटेश अय्यंगार)	7.50
सोरठ तेरा बहता पानी	झबेर चन्द मेघाणी	6.25
पूर्ण कुंभ	रानी चंद	11.25
सेतु	द्विववेंदल विशालाक्षी	6.00
यात्रा का अंत	नील पद्मनाभन	7.00
आखिर जो बचा	बुच्ची बाबू	8.50
अनादि अनंत	श्रीरंग	12.25
पुदुमैइपित्तन की कहानियां	(सं.) एम. पी. सोमसुन्दरम्	6.75
किनो ग्वाले की गली	एस. के. घोष	8.25
नवन्न	बिजन भट्टाचार्य	7.25
मुक्ति	शांतिनाथ देसाई	11.75
वनहंसी श्वेतपद्मा	मनोरंजन दास एवं प्राणबंधुकर	8.00
पुराना लखनऊ	अब्दुल हलीम "शरर"	16.25

इनके अतिरिक्त सभी आयुवर्गों के लिए सभी भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी में अनेकानेक ट्रस्ट की पुस्तकें.

प्राप्ति स्थान

सभी प्रमुख विक्रेताओं तथा ट्रस्ट के निम्नलिखित पुस्तक केंद्रों से :

ए-4, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016
67/2, महात्मा गांधी मार्ग, कलकत्ता-9
सिटी सेंट्रल लाइब्रेरी बिल्डिंग, अशोक नगर, हैदराबाद-20
गवर्नमेंट हायर सेकेंडरी स्कूल, टाउन हाल, अमृतसर
यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, विश्वभारती यूनिवर्सिटी, शांति निकेतन (प. बंगाल)

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ए-5, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदर्भ : यह अंक

अनुभव संसार के नाम पर आज महिला और पुरुष लेखन के दायरे बनाये जा रहे हैं, इन्हें अलग-अलग वर्गों में बांटा जा रहा है. मुझे लगता है यह साहित्य और रचना-धर्मिता के नाम पर एक छल है, एक षड्यंत्र है. इससे न समूचे साहित्य का हित होगा, न रचना का और न रचनाकार का.

लेखन लेखन होता है महिला या पुरुष नहीं होता. ऐसा वर्गीकरण रचनाकार का हो सकता है, रचना का नहीं. अनुभव के दायरे के विस्तार और संकुचन की बात दोनों पर ही समान रूप से लागू हो सकती है. अनुभव प्राप्त करना और उसे अपने-अपने ढंग से अभिव्यक्ति देना दोनों के ही अधिकार क्षेत्र की बातें हैं. ये किसी एक की जागीर नहीं.

एक बात मैं इस अंक के संबंध में स्पष्ट कर दूं. पहले हमने किसी दूसरे अंक की तैयारी की थी लेकिन ऐन वक्त पर इस अंक की योजना बन गयी. इसीलिए हम अन्य बहुत-सी लेखिकाओं से संपर्क नहीं कर पाये, इसका हमें अफसोस है. इसके लिए हम पूर्व उपलब्ध सामग्री पर ही निर्भर हैं.

पूर्व उपलब्ध सामग्री के संबंध में भी एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि स्थान सीमा के कारण इस अंक के लिए हमें हिंदी की सिर्फ छह रचनाएं ही चुननी थीं और उनमें भी एक 'युवा लेखन प्रतियोगिता' के लिए और एक बिल्कुल नयी 'आते हुए लोग' के लिए. जिन लेखिकाओं की उपलब्ध सामग्री छूट गयी है उसे हम अगले अंकों में ले रहे हैं. लेखिकाओं का किसी एक अंक में छप जाना या रह जाना, उनके प्रति हमारे सम्मान भाव में कोई कमी नहीं ला सकता.

दीपावली की शुभकामनाओं के साथ हम यह अंक देश की समूची नारी शक्ति के नाम समर्पित कर रहे हैं.

कं. ना. [illegible]

आपकी बात

सार-सार को गहि रहे

सारिका का **लोक-कथा-विशेषांक** पढ़ा. यह काफी रोचक एवं उपयोगी सिद्ध हुआ है. जिस प्रकार विश्व के समस्त मानव समान हैं, हाथ, पैर, नाक, कान काटने पर भी वही खून निकलता है यानी कि लाल, ठीक इसी प्रकार लोक-कथा विशेषांक की कथाएं बतलाती हैं कि लोक-कथा चाहे वह किसी भी देश, प्रांत या किसी भी भाषा में हो उनका सार तत्त्व एक ही है. इससे यह सिद्ध होता है कि लोक-कथा हो चाहे मनुष्य हो, उनमें विभिन्नता किसी और स्तर पर हो सकती है लेकिन मूलभूत सार एक है. सभी लोक-कथाओं का संदेश एक ही है, समान है, प्रस्तुति का ढंग जरूर अलग हो सकता है. इससे भाई-चारे, विश्व बंधुत्व को बल मिलता है.

जहां तक पृष्ठ 59 पर सुशील वर्मा द्वारा प्रस्तुत भारतीय लोक-कथा **शराब का कमाल** का प्रश्न है, वह मात्र एक चुटकुला है न कि लोक-कथा. यह पढ़ने से स्वतः ही स्पष्ट हो जावेगा. कुल मिलाकर यह विशेषांक काफी उपयोगी एवं रोचक रहा.

● **घनश्याम कर्णावत, जयपुर**

सर्वविदित राजनीति

अमरकांत की कथा **चिड़िया** एक सामाजिक जागृति का विवेचन करती है. विष्णु प्रभाकर की कथा **मेरा लाल राजा से भी बड़ा** दलित वर्ग को संघर्षरत रहने की प्रेरणा देती है.

रमेश उपाध्याय का लेख **लोक-कथाओं में अंतर्निहित राजनीति** शीर्षक के अनुरूप कोई भी स्पष्ट वक्तव्य नहीं देता. उपाध्यायजी ने कथाओं के जन्म को राजनीति से जोड़कर वहीं पर समाप्त कर दिया है. उन्हें कथाओं का आज की राजनीति पर क्या प्रभाव है, यह भी स्पष्ट करना था. साथ ही यह भी कि आज की स्थिति में राजनीति व लोक-कथा किस प्रकार एक जुट होकर जनता को गुमराह करती हैं.

● **अरविंद कुमार शर्मा, शहडोल**

वर्ष : २४; अंक : ३६४
१-१५ सितंबर, १९८४
लोक-कथा विशेषांक : एक

शोधार्थियों के लिए

विलंब से ही सही आपके पाक्षिक का लोक-कथा अंक प्रथम देखने को मिला. यह अंक प्रशंसनीय है तथा लोककथाओं की प्रवृत्ति के विषय में जानकारी देने वाला होते हुए लोककथाओं के शोधार्थियों के लिए वरदान है. आपके संपादकत्व में **सारिका** अपनी पुरानी गरिमा प्राप्त कर रही है इसमें आश्चर्य नहीं. विभिन्न विषयों पर विशेषांक निकालकर आप **सारिका** को अमर बनाने का स्तुत्य प्रयास कर रहे हैं इसके लिए आपको कोटि-कोटि धन्यवाद.

विश्व की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं की लोककथाओं तथा हिंदुस्तान की भी अधिकांश भाषाओं की लोककथाओं का इस विशेषांक से परिचय मिलता है.

● **उमाशंकर प्रसाद सिंह, मोतिहारी**

कहां हैं वे दादियां-नानियां

लोक-कथा विशेषांक : एक पढ़ा, मजा आ गया. पचीस वर्ष पहले अपनी दादी से सुनी कहानियों का संकलन पाकर काफी प्रसन्नता हुई. आधुनिक परिवेश में ऐसी कहानियां लुप्त हो चली थीं. क्योंकि अब वैसी दादी-नानी रहीं भी नहीं और न वैसे बच्चे रहे. ऐसे माहौल में आपने लोक-कथा विशेषांक प्रकाशित कर एक सराहनीय कार्य किया. **चिड़िया, जुआरी राजा, लकड़हारे का लड़का, बुराई-भलाई** कथाओं में आपने कथा के माध्यम से जीवनोपयोगी संदेश देने का भी प्रयास किया है. कुल मिलाकर विशेषांक की परंपरा में **सारिका** का यह विशेषांक एक संग्रहणीय विशेषांक बन गया है.

● **ललन मिश्रा, समस्तीपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जीवन

आज के आधुनिक कहानी लेखन के युग में लोक-कथाओं को जो लुप्तप्रायः हो गयी थीं, पुनर्जीवन देने का आपका यह प्रयास सराहनीय है. इस संबंध में मेरा एक सुझाव है कि आप अपनी इस लोकप्रिय पाक्षिक पत्रिका में नियमित रूप से अन्य कहानियों के साथ एक लोक-कथा भी प्रकाशित करें तो उत्तम होगा एवं मृतप्रायः लोक-कथा शैली पुनः जी उठेगी.

● **रणछोड़ त्रिपाठी, भीलवाड़ा**

ऊबड़-खाबड़ भूमि और नंगी दृष्टि

हमेशा की तरह इस बार भी **सारिका** पढ़कर सोच में फैलाव हुआ.

आपके (अपनी बात स्तंभ के) विचारों से मैं सहमत हूं. सही है, लोक-कथाएं किसी भी राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर हैं. वैसे तो इस अंक की सभी कहानियां व लघुकहानियां हमेशा की तरह आत्मसात् करने योग्य थीं.

सारिका की हर कहानी समाज, राजनीति, पारिवारिक समस्याओं आदि से जुड़ी हुई है. तथा यह विभिन्न समुदायों व वर्गों को एक निष्पक्ष व नंगी दृष्टि से देखती है, उसकी कमजोरियों पर प्रहार करती है, यथार्थ की कठोर ऊबड़-खाबड़ भूमि पर पैदा होती है. समाज, राजनीति व परिवार की सही तस्वीर खींचती है. लोककथाएं भी प्राचीन परंपराओं के विषय पर रोशनी फेंकती हुई हमें सोचने को बाध्य करती हैं.

एक लोक कहानी (ख्वाजा अहमद अब्बास), **भेड़िया, एक दूसरे का नौकर, टैक्स का डर**, यूनानी लोक-कथा **अपील** व सिसली की लोक-कथा **तीन वरदान** तथा कहानी **जुआरी राजा, यदि ऐसा होता, बुराई-भलाई, त्रिया चरित्तर** तथा **किस्से खोजा नसरुद्दीन के** से मेरे ज्ञान में वृद्धि ही हुई.

● **श्रवण कुमार दुसीजा, ग्वालियर**

परंपरा बनाम लोक-कथा

विशेषांकों की जो एक परंपरा आपने ...रखी है वह अत्यंत रुचिकर व सफल लगी है. इस सकारात्मक प्रयास के लिए आप तथा आपके सहयोगी बधाई के पात्र हैं.

लोक-कथा विशेषांक : एक मैंने देखा

और छिटपुट पढ़ने के बाद मुझे यह बहुत ही पसंद आया.

● **रवि सिंह राजा, मंडी (हि. प्र.)**

तस्वीर बोलती है

सारिका : अंक : ३६२

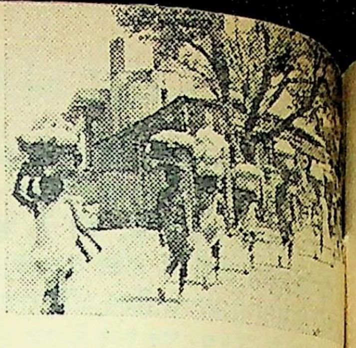

पुरस्कार विजेताओं को बधाई

प्रथम पुरस्कार : 50 रुपये

ये कैसा खामोशी में डूबा शहर है,
चलो अब यहां से, यहां क्या बचा है.

--अ. ना. मुद्गल

● रमण; द्वारा उज्ज्वलदास शील, क्वा. नं.-जी/240-सी--ब्रह्मपुरा रेलवे कालोनी, मुजफ्फरपुर--842003

द्वितीय पुरस्कार : 30 रुपये

कौन जाने कब तलक यूं ही चलेगा कारवां,
कब तलक जारी रहेगा, यह फरेबों का कहर.

--चंद्रदेव सिंह

● श्रीकांत अंबष्ट, द्वारा श्री भगवान प्रसाद, मेन रोड, झरिया, धनबाद

तृतीय पुरस्कार : 20 रुपये

रह-रहकर आंखों में चुभती पथ की निर्जन दोपहरी,
आगे और बढ़ें तो शायद दृश्य सुहाने आयेंगे.

--दुष्यंत कुमार

● अशोक, रघुवर, 471, ई. डब्ल्यू. एस. मुनीनगर, उज्जैन (म.प्र.)

प्रशंसित शीर्षक

मान जाओ कि सर पर है कड़ी धूप अभी,
डूबती शाम का हर रंग सुनहरा होगा.

--इकबाल अंजुम

● मिथिलेश मिश्र, नवाबगंज (गोंडा)

दिन को भटक रहे हैं, मंजिल के वास्ते,
वो लोग क्या करेंगे, गर रात हो गयी.

● संजय कुमार जैन, दमोह (म. प्र.)

सर तो ढंका, पांव नंगे हैं,
नगरी ढंकी, गांव नंगे हैं,
गात-गात की लज्जा ढंक ले,
ऐसा वसन नहीं मिलता है,
भटके हुए उदास समय को
वातावरण नहीं मिलता है.

● अतीत सक्सेना, बदायूं (उ.प्र.)

लघुकथा छात्र प्रतियोगिता

किरोड़ी मल कालेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) द्वारा प्रस्तावित अखिल-भारतीय लघुकथा छात्र प्रतियोगिता (1984) के लिए अधिकतम 250 शब्दों की मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएं 30 नवंबर, 1984 तक निम्न पते पर आमंत्रित हैं. प्रथम तीन रचनाएं पुरस्कृत की जाएंगी.

अनिल कुमार झा, सचिव: रचनात्मक लेखन परिषद, 49, किरोड़ीमल कालेज हॉस्टल, दिल्ली-110007.

आवाज गढ़ी की या गांव की

आपने लोक-कथा विशेषांक के माध्यम से ग्रामीण संवेदनाओं एवं भावनाओं को उजागर करने की जो कोशिश की है, निश्चित रूप से एक प्रशंसनीय कार्य है.

आपने इस श्रम से हमारे गांव के उन जवानों का साक्षात्कार करने का प्रयास किया है जो एक न एक दिन इस आधुनिकता का शिकार हो अपना अस्तित्व ही नष्ट कर देते.

मुझे **गढ़ी की आवाज** (यश सरोज) ने काफी प्रभावित किया.

● **राजकिशोर चुन्नू, इलाहाबाद**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

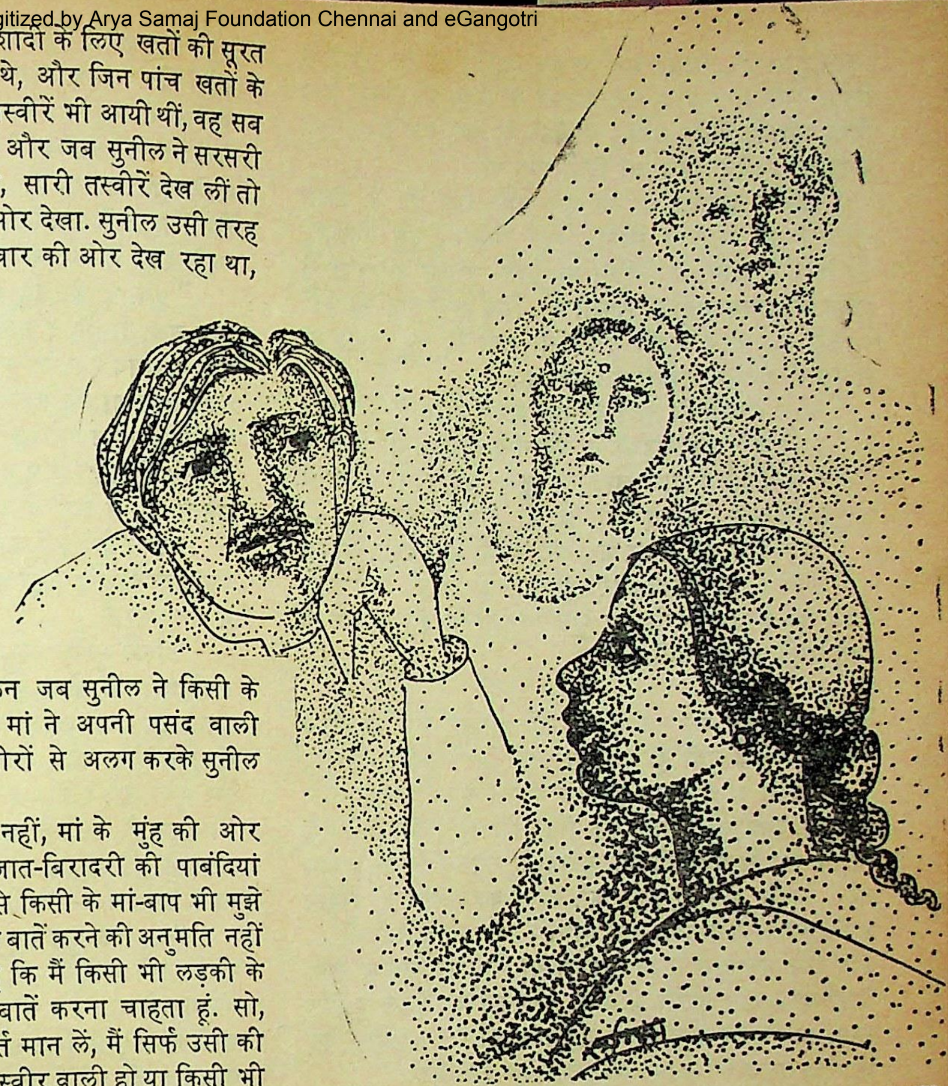

त्रिशूल

•अमृता प्रीतम

"मैं कोई शिवजी नहीं हूं, लेकिन एक त्रिशूल है, जो सारी उम्र मेरे हाथ में रहेगा. जिसे भी मेरे साथ उम्र गुजारनी है, उसे मेरे साथ यह त्रिशूल भी उठाना पड़ेगा." क्या और कैसा था वह त्रिशूल, जो उसकी होनेवाली पत्नी को ताउम्र उठाना था? मानवीय संबंधों की जटिलता को रेखांकित करती पंजाबी कथा—

सुनील की मां ने सुनील की शादी के लिए खतों की सूरत में जितने भी पैगाम आये थे, और जिन पांच खतों के साथ पांच लड़कियों की तस्वीरें भी आयी थीं, वह सब कुछ सुनील के आगे रख दिया. और जब सुनील ने सरसरी नजर से वह सारे खत पढ़ लिये, सारी तस्वीरें देख लीं तो मां ने गौर से सुनील के मुंह की ओर देखा. सुनील उसी तरह खाली-खाली नजर से सामने दीवार की ओर देख रहा था, जैसे उन खतों को पढ़ने से पहले और उन तस्वीरों को देखने से पहले सामने वाली दीवार की ओर देख रहा था.

मां ने पांचों में से एक तस्वीर वाली लड़की अपने मन में चुन रखी थी, लेकिन वह सुनील के चुनाव की राह में नहीं आना चाहती थी, इसलिए इतनी देर चुप रही थी, लेकिन जब सुनील ने किसी के लिए भी हामी नहीं भरी तो मां ने अपनी पसंद वाली लड़की की तस्वीर, बाकी तस्वीरों से अलग करके सुनील के सामने रख दी.

सुनील ने तस्वीर की ओर नहीं, मां के मुंह की ओर देखा और कहा, "मैं अपनी जात-बिरादरी की पाबंदियां जानता हूं. जानता हूं कि इनमें से किसी के मां-बाप भी मुझे जाती तौर पर अपनी लड़की से बातें करने की अनुमति नहीं देंगे, लेकिन मेरी एक ही शर्त है कि मैं किसी भी लड़की के लिए हां करने से पहले उससे बातें करना चाहता हूं. सो, जिस लड़की के मां-बाप मेरी शर्त मान लें, मैं सिर्फ उसी की बात सोच सकता हूं. वह इस तस्वीर वाली हो या किसी भी तस्वीर वाली..."

और कुछ दिनों बाद मां ने अपनी पसंद वाली लड़की के मां-बाप से सुनील की यह शर्त मनवा ली.

शर्त मान ली गयी थी, लेकिन यह शर्त मनवाकर मां खुश नहीं थी, क्योंकि दूसरी ओर से शर्त की तरह नहीं, लेकिन एक स्पष्टवादिता की तरह कहा गया था कि लड़की पढ़ी-लिखी है, अगर सुनील को यह रिश्ता मंजूर हुआ तो रिश्ता जरूर होगा, लेकिन उसमें किसी भी तरह का कोई दहेज शामिल नहीं होगा. और मां जिस लड़की के रिश्ते के लिए आतुर थी, उसी से उदासीन हो गयी थी, लेकिन सुनील की आंखें, जो पूरे दो बरस से अपने कमरे की दीवार की ओर खाली-खाली नजरों से ताकती रहती थीं, उस दीवार पर जैसे कोई परछाईं सी हिलती हुई देखने लगीं.

और आखिर मुलाकात का समय आ गया. लड़की वालों के घर में ही पिछवाड़े की तरफ एक कच्चा कोठा था नारियल के पेड़ों में छिपा हुआ-सा, जिसे बिरादरी की आंखों से बचा कर झाड़-पोंछ दिया गया था.

लकड़ी का एक तख्ता उस कच्चे कोठे की दीवार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिना हुआ था, शायद घर का कुछ फालतू सामान रखने के लिए. वही झाड़-पोंछ कर लड़की के बैठने की जगह बना दिया गया था और सुनील के बैठने के लिए एक लकड़ी की कुर्सी का विशेष प्रबंध कर दिया गया था.

सुनील जानता था कि इस समय उसे घर के अगले दरवाजे की ओर से स्वागत नहीं मिलेगा, उसे पिछवाड़े की ओर से जाना है, लेकिन यह बात उसकी मुलाकात के रास्ते में बाधक नहीं हो सकती थी. सिर्फ मुलाकात की घड़ी में उसे एक बात अपनी गलती-सी लगी कि वह अपनी मां से लड़की का नाम पूछना भूल गया था.

और लकड़ी के तख्ते के पास अपने ही अंगों में सिमट कर खड़ी हुई एक लड़की ने जब नमस्कार की-सी मुद्रा में उसके आगे दोनों हाथ जोड़े तो कुछ घबराकर सुनील के मुंह से निकला, "बैठिए देवी, जो भी आप का नाम है. . ."

लड़की ने एक नजर भर कर उसकी ओर देखा, लेकिन सुनील का ध्यान उसकी ओर नहीं था. वह कुर्सी की ओर उसके बैठने का इशारा करते हुए कुछ सिकुड़ी-सी हुई दीवार के पास तख्ते पर बैठ गयी.

अगली चुप को लड़की को नहीं तोड़ना था, इसलिए चुप कुछ लंबी हो गयी तो उसने फिर सुनील की ओर देखा और हैरान हुई कि उसकी नजर उसकी ओर नहीं थी. आज सवेरे मां ने एक रंगीन किनारे वाली धोती उसे विशेष रूप से पहनायी थी. केसर के उबटन से उसे नहाने और संवरने के लिए कहा था, आंखों का काजल भी विशेष रूप से डलवाया गया था और हाथों में कांच की चूड़ियां भी . . . और उसे जैसे शुरू से ही मालूम था कि आज उसका नख-शिख तराजू पर परखा जायेगा. . .लेकिन वह हैरान हुई कि ब्याह का फैसला करने वाला, जो खास शर्त रख कर आया था, वह एक नजर भी उसकी ओर नहीं देख रहा था.

सुनील कुर्सी पर ऐसे बैठा हुआ था जैसे अपने ही खयालों की धुंध में लिपटा हुआ हो.

और जैसे सूरज की धूप अचानक कभी गहरी धुंध को चीर देती है, सुनील की आवाज चमक-सी पड़ी, "मैं कोई शिवजी नहीं हूं, लेकिन एक त्रिशूल है, जो सारी उम्र मेरे हाथ में रहेगा."

लड़की चौंक गयी और सुनील के हाथों की ओर देखने लगी. सुनील भी उस समय अपने हाथों की ओर देख रहा था. बोला, "जिसे भी मेरे साथ उम्र गुजारनी है, उसे मेरे साथ यह त्रिशूल भी उठाना पड़ेगा.मैं यही कहना चाहता था, इसलिए मिलने की शर्त रखी थी."

लड़की अपने ही अंगों में जैसे सिकुड़ी हुई थी, लेकिन उसे लगा, उसके अंगों का तनाव कम हो रहा है. उसका संकोच अब उसके गिर्द उसकी धोती के कसे हुए पल्ले जैसा नहीं था. वह सुनील के चेहरे की ओर देखने लगी.

सुनील की आंखें न लड़की की ओर देख रही थीं, न किसी दीवार की ओर, वह जैसे दीवारों के पार दूर तक फैले हुए किसी शून्य में देख रही थीं.

वह बोला, "जैसे किसी पहाड़ की चढ़ाई चढ़ते समय इर्द-गिर्द के खड्ड और गहरे होते जाते हैं,उसी तरह मैं जब बचपन से गुजरकर जवानी की चढ़ाई चढ़ने लगा तो मुझे लगा कि मेरे दायें-बायें गहरे खड्ड हैं, जो दिनोंदिन और गहरे होते जा रहे हैं. . .मैं रोज सपने में डरता था कि अभी किसी पहाड़ के पत्थर पर से मेरा पैर फिसल जायेगा और मैं गहरे खड्ड में गिर जाऊंगा.

"एम. ए. कर रहा था, जब घर में मां ने मेरे ब्याह की बात चला दी थी. न जाने इस बात में क्या राज था, मुझे रोज रात के समय एक भय-सा लगने लगा. मुझे आये दिन सपना आने लगा था कि मेरा ब्याह हो चुका है और मेरी पत्नी मेरे साथ पहाड़ पर चढ़ रही है और मैं अचानक सोचता हूं कि उसे दोनों हाथों से पकड़ कर खड्ड में गिरा दूं.. .या यह लगता था, मैं अभी दोनों हाथों से उसका गला घोंट दूंगा."

सामने बैठी हुई लड़की को लगा जैसे उसकी आंखों में पड़ा हुआ काजल, गहरे काले बादलों की तरह उसकी आंखों में भर गया है.

लेकिन सुनील का ध्यान लड़की की ओर नहीं था. वह अपने ध्यान में खोया कहे जा रहा था, "मुझे अपने आप से इतना डर लगने लगा कि मैं घबरा कर पहले एक सायकायट्रिस्ट के पास गया. फिर एक दरगाह पर, जहां एक दिन एक मुसलमान फकीर ने मुझे बताया कि मुझ पर किसी रूह की पकड़ है. उसी ने बताया कि यह मेरी सौतेली मां की भटकती हुई रूह है, जो मेरे बाप से बदला लेना चाहती है ताकि उसके वंश में किसी का घर आबाद न हो.

"तब तक मुझे यह मालूम नहीं था कि मेरे पिता की कोई पहली पत्नी भी थी, जिसे उसने छोड़ दिया था. यह बात मैंने पहली बार उस मुसलमान फकीर से सुनी. घर आकर पहले मां से पूछा, फिर सीधे पिता से ही. मालूम हुआ कि यह बात सच थी. मेरे पिता ने अपनी पहली पत्नी को दो बच्चों समेत छोड़ दिया था. वह औरत और वह बच्चे अब कहां थे, मेरे पिता मुझे कुछ नहीं बता सके. मैंने उस दरगाह पर जाकर फिर उस फकीर को ढूंढ़ना चाहा, लेकिन वह मुझे नहीं मिला.

किसी ने एक महापंडित की खबर दी. मैं उसके पास गया, लेकिन उसने सिर्फ इतना कहा कि तुम्हारी सौतेली मां अब जीवित नहीं है,तभी वह एक भटकती हुई रूह बनकर तुम्हें परेशान कर रही है. उसकी मृत्यु पर विधिवत क्रिया-कर्म नहीं हुआ होगा, इसीलिए उसकी आत्मा भटक रही है. तुम हरिद्वार जाकर उसके नाम पर विधिवत क्रिया-कर्म करो.

"मैंने घर में यह बात मां को भी नहीं बताई, पिता को भी नहीं और हरिद्वार जाकर उसके नाम पर दान-पुण्य भी किया, क्रिया-कर्म भी, लेकिन मेरी दशा में अंतर नहीं आया; लेकिन कुछ दिनों बाद मेरे नाम एक चिट्ठी आयी, जो मेरी सौतेली बहन की लिखी हुई थी कि अब मां भी नहीं रही; मेरा भाई पहले ही मर गया था, मैं अकेली हूं. और अब तुम्हारे सिवा मेरा कोई नहीं है. आखिर मैं तुम्हारी बहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यमेव जयते

▣ उषाभास्कर राव

थानेदार साहब, मैं बहुत दुःखी हूं. मेरी जवान बीवी और एक बच्ची एक साथ मर गयी. इस दुःख को भुलाने के लिए मैंने आज जीवन में पहली बार शराब को हाथ लगाया. मुझे छोड़ दीजिए थानेदार साहब, मैं और शराब नहीं पीऊंगा.'

शराबबंदी के दौरान पकड़े गये तीन शराबियों में से एक की सफाई थी यह, पर इंस्पेक्टर पर इसका कोई असर नहीं हुआ. शराबी को एक सिपाही के हवाले करते हुए उसने दूसरे से जवाब तलब किया.

दूसरे का जवाब था, "मेरे साथ भी ट्रेजडी है सर! मेरी माशूका ने मुझे छोड़कर मेरे छोटे भाई से कोर्ट मैरेज कर ली. उसी गम में. . उसे भी हिरासत में ले लिया गया. उसका झूठ भी कारगर साबित न हुआ.

तीसरे शराबी ने कुछ अधिक पी रखी थी.लड़खड़ाती जबान से उसने जो (कुछ भी) कहा, उसे सुनकर इंस्पेक्टर सन्नाटे में रह गया. उसे लगा, जैसे उसका जेहन उस शराबी की मुट्ठी में सख्ती से भिंच गया हो.

तीसरे शराबी ने कहा, "शाहब्ब! मैं डीशी शाहब्ब के लिए 'माल' ले गया था. वहां मुझे भी पीने को कहा गया. शो मैंने पी."

इंस्पेक्टर को कर्त्तव्यबोध हो गया और झूमते हुए शराबी का आगे बढ़ जाना उससे रोका न गया. □

हूं. तुम मुझ से मिलते क्यों नहीं.

"वही पंडित जिसने क्रिया-कर्म करवाने के लिए कहा था, कहने लगा कि तुम्हारी बहन की यह चिट्ठी जरूर उसी क्रिया-कर्म का असर है. तुम्हारी सौतेली मां की भटकती हुई रूह ने जरूर उसे प्रेरणा दी होगी तुम्हें चिट्ठी लिखने की.

"मैं अपने मां-बाप की चोरी से उस चिट्ठी में लिखे पते पर गया और अपनी बहन को ढूंढ़ लिया. वह मुझे गले लगाकर बहुत रोयी. उसी ने मुझे बताया कि अपनी मां की मौत के बाद वह अपने बाप के घर आयी थी, लेकिन बाप ने उसे आसरा नहीं दिया. मेरी मां ने भी सवेरे की आयी हुई लड़की को सिर्फ खाना खिलाकर दोपहर को कह दिया था कि अब वह जा सकती है

"मेरी वह बहन मुझसे उम्र में बहुत बड़ी है. जैसे-तैसे करके उसके निर्धन मामा ने उसका ब्याह कर दिया था.उस का पति अच्छा है, इसीलिए उसका घर बस गया है. उसे सिर्फ एक दुख था कि उसके जीवित पिता ने कभी उसका हाल नहीं पूछा.और फिर उसे एक सपना बार-बार आने लगा था, जिसमें उसे अपने मरे हुए भाई की शक्ल दिखाई देती थी. यही भाई का वियोग था, जिसने एक दिन उससे मुझे चिट्ठी लिखवा दी थी.

सुनील जब यह सब कुछ बता रहा था, उसके सामने लकड़ी के तख्ते पर बैठी हुई लड़की को लगा कि उसकी आंखों का काजल,जो गहरे काले बादलों की तरह उसकी आंखों में फैल गया था, अब उन बादलों में से उसे कुछ रोशनी दिखाई देने लगी है. वह हुंकारे की तरह तख्ते से कुछ आगे को सरककर सुनील की कुर्सी के पास हो गयी.

सुनील कह रहा था, "मुझे वह दिन पता नहीं है जब मेरी वह बहन अपने टूटे हुए रिश्ते को जोड़ने के लिए हमारे घर आयी थी—हमारे नहीं, अपने घर आयी थी. और उसे किसी ने उसका रिश्ता नहीं लौटाया था, लेकिन मुझे यह पता है कि जिस दिन मुझे इस बात का पता लगा, मेरे अपने घर से मेरा रिश्ता टूट गया.

"अब मेरा रिश्ता सिर्फ मेरी उस बहन से है और किसी से नहीं. मैं अभी भी मां-बाप के घर में रहता हूं,लेकिन यह उनके पास रहने वाली रस्म मैं ज्यादा दिन नहीं निभा सकता. . .उन्हें बिलकुल मालूम नहीं है कि मैं दफ्तर की छुट्टियों में जब बाहर जाता हूं तो कहां जाता हूं. मैं अपनी बहन के पास जाकर कई दिन रहता हूं. मेरी तनखाह का कुछ हिस्सा हर महीने मेरी बहन के पास जाता है. वह सुखी है, लेकिन वे लोग बहुत गरीब हैं."

सुनील के सामने बैठी हुई लड़की के गिर्द जो रंगीन किनारे वाली धोती थी, लड़की को लगा कि उस किनारे के रंग सारी धोती पर फैलते जा रहे हैं.

उसे लगा पता नहीं यह सुनील के मन वाले उस भेद का असर था, जो उसने आज तक अपने सगे माता-पिता से भी नहीं बांटा था, और आज अचानक एक अजनबी लड़की से बांटने आ गया था या उसकी आंखों का असर था, जो इस समय सीधा लड़की की ओर देख रही थीं.

सुनील कह रहा था, "यही त्रिशूल है. दरगाहवाले पीर के कहने के अनुसार मेरी भयानक बेचैनी इसलिए थी कि मुझ पर एक भटकती हुई रूह की पकड़ थी. और मेरी उस बहन के कहने के अनुसार यह उसके मरे हुए भाई की रूह थी, जिसने मेरी सूरत में दोबारा जन्म लिया है. और मेरे अनुसार यह मेरे पिता का पाप है, जिसने पछतावे की सूरत में उसके अपने घर में जन्म ले लिया है.

सामने बैठी हुई लड़की ने अचानक फट्टे से उठकर सुनील के पैर छू लिये और सिर झुकाकर उसके सामने खड़ी हो गयी. उसके मुंह से बहुत धीरे से, लेकिन पुख्ता लफ्जों में निकला, "मैं यह त्रिशूल उठा सकती हूं."

सुनील कितनी ही देर तक चुपचाप उस लड़की की ओर देखता रहा. फिर बोला, "देवी, मैं अभी तक तुम्हारा नाम भी नहीं पूछ सका. . ."

"मेरा नाम पार्वती है." लड़की धीरे से हंस पड़ी और बोली, "आज तक कुछ और नाम था, लेकिन आज से मेरा नाम पार्वती है." □

अनुवाद : बी. एस. भटनागर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुनू

मृणाल पांडे

आसमान वहां पर आकर टूटता था, जहां ऊंची-लंबी पर्वत चोटी घोड़े की काठी-सी समतल होकर फैल गयी थी. एक छोटा सफेद मंदिर दीखने से पहले अपनी घंटियों में टुनटुन सुनायी पड़ता. धूप, हवा और पानी से चिंदी-चिंदी, हल्की जोगिया पताकाओंवाला मंदिर.

हर इतवार के दिन कुनू सिर धोती थी, और सिर धोकर यहां आ चढ़ती थी. मंदिर के पिछवाड़े, जमीन से कई मील ऊपर, एक जीभ की तरह निकली उस चट्टान पर बाल सुखाती वह सोचती थी, क्या वह इस चट्टान से गिर सकेगी? ... सोचती-सोचती कुनू अपने-आपको खूब दुष्ट और खुला-खुला अनुभव करती.

यहां, इस घातक सलेटी चट्टान पर लेटी वह हरी-भरी जमीन से भी मीलों दूर थी, और खुशनुमा नीले आसमान से भी. तब वह जानती न थी कि इसी को खुशी कहते हैं.

कभी-कभी कुनू ऐसा भी करती थी कि अपनी चप्पलें चट्टान के पीछे छुपाकर नंगे पैरों मंदिर की ओर से ढलवान पर ऊपर-नीचे भागती. ढलवान चीड़ की नुकीली पत्तियों से कतई चिकना था, रुकते-रुकते भी ढाल पर पैर फिसलते जाते, और कुछ दूर फिसलने के बाद ढाल से उसका घर दीखने लगता था, लाल टीन की ढलवां छतोंवाला बड़ा-सा घर, झबरे कुत्ते-सा धूप में ऊंघता हुआ! छत पर बड़ी-मुंगोड़ियां सूखती रहतीं, सफेद और पीली. कभी-कभी उनकी तली पर छत का लाल रोगन भी भीतर चला आता था. जाड़ों भर घर में बड़ी-मुंगोड़ी पकतीं. वे कुछ-कुछ मछलियों-सी गंधाती थीं.

"समुद्र कैसा होता है?" कुनू ने एक बार बड़ी-भात खाते-खाते पिता से पूछा था.

मां ने टोका था, "मुंह में खाना भरकर नहीं बोलते."

समुद्र तुरंत कुनू के गले में फंदे की तरह ऐसा लग गया कि उसका चेहरा लाल पड़ गया था—खांसते-खांसते.

"इस वक्त समुद्र क्या याद आया तुझे?" पिता ने हल्के विस्मय से पूछा था, फिर उसकी पीठ पर धौल देते, उसकी खांसी सहलाते वे बात भूल गये थे. समुद्र देर तक अटका रहा कुनू के हलक में.

समुद्र कैसा होता होगा भला? अक्सर जब-जब कुनू अपनी चट्टान पर अकेली होती, आंखें बंद करके वह अपने-आपको अपने गिर्द उमड़ती हवाओं के हवाले कर देती... और देर तक हवा का समुद्र उसको हरी घास की तरह लहराता, उभचूभ करता रहता. उसे लगता वह कुनू नहीं, मिस्र की रानी क्लियोपेट्रा है—सुनहरे सर्प का मुकुट लगाये, बजरे में पसरी हुई! वह एक नाजुक हिना लगा हाथ उठाती है, तो हजार-हजार चप्पुओं में हरकत होती है, और उसका बजरा पनियल सांप की तेजी से समुद्र का सीना चीरता चल निकलता है! वह दोबारा हाथ उठाती है, तो हवा की गीली अयाल में से भाप की तरह हिनहिनाहटें उठने लगती हैं, समुद्र के धुर उत्तर पर एक जहाजी सैन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दल छा जाता है, देखते-देखते. कुनू का बजरा धूप में आग की लकीर-सा चमकता है, दप! दप! मूंगें के रंग की धूप. मणिक के तहखानोंवाले सूर्यास्त. हवा, पानी, आग, कुनू!

कुनू आवाजों से अपने लिए लेटे-लेटे कुछ भी गढ़ सकती थी, समुद्र, जंगल, शेर की मांद, घोड़ों की टापों का धमाकेदार हुजूम. अपनी जादुई चट्टान पर खड़ी होकर वह अपनी बाहें ऊपर करती, तो उसका फ्राक पंखों की तरह उसके गिर्द फटफटा उठता. . और उस क्षण कुनू को लगता कि वह तो उड़ भी सकती है!

रात को बिछौने पर लेटी, छोटे भाई के लिए कहानी गढ़ती हुई कुनू कहती कि जब बड़ी होकर वह महारानी बनेगी, तो इस पूरी पहाड़ी पर पत्थरों की एक मजबूत दीवार चिनवा देगी, ताकि घाटी से या मोटर-सड़क से उसकी चट्टान को कोई नहीं देख सके. ऊपर मंदिर में घंटी बजाकर हर हफ्ते वह प्रार्थना करती कि जब-जब वह अपनी चट्टान पर लेटने आये, तो आसमान ऐसा ही खुला-खुला हो, ढलवान पर भाई के तीखी-पतली आवाजोंवाले चिबिल्ले दोस्त पेड़ों पर ढेले फेंकने का अभ्यास न करते हों, और मां बड़ी-मुंगोड़ी पकाना कतई बंद कर दे.

वक्त और उम्र के किस पड़ाव पर आकर कोई लड़की सहसा यह महसूस करने लगती है कि दुश्मन उसके किले का चप्पा-चप्पा जान गया है और अब वह खुद दुश्मन को कभी भी, कुछ भी देने से इंकार नहीं कर सकेगी? — एक युवती के मन के आकाश और घर के आंगन में तुलना करती कहानी की महिला जीवन को स्वयं उनका परिवार ही मर्यादाओं की दुहाई दे-देकर किस कदर घुटन का शिकार बना देता है. . . .

"मुझे तो समझ में नहीं आता, इसका क्या होगा!" मां अपनी सुंदर भूरी आंखों में विस्मय और विषाद भरकर कहती. दाल के बड़े तलती हुई मां कुहनी से बाल पीछे करती तो पिसी दाल का एक चकत्ता उसके कपोल पर चिपक जाता. मां 'हां-हां' करती रह जाती और सीधे कढ़ाव से गर्म-गर्म बड़ा 'हा-हा-हू-हू' करती खाती हुई कुनू ऊपर भाग जाती.

कुनू के कई मित्र थे. सबसे पक्की दोस्त थी, लाल-लाल सीनेवाली वह चिड़िया, जो घिंगारू के लाल-लाल फलों को उसके साथ कुतरकर खाती थी. पंख उठाकर चोंच से सीना खुजाती हुई चिड़िया, गर्दन तनिक टेढ़ी कर गौर से देखती, और कहती. . . 'क्यों क्यों क्यों?' कम से कम कुनू को तो ऐसा ही सुनायी पड़ता था.

एक बार ऊपर मंदिर में किसी ने एक के बाद एक पीतल की घंटियों को छेड़ दिया था . . . टुन-टुन-टुन! धूप इतनी तेज थी कि चट्टान पर लेटी कुनू को बंद आंखों के भीतर नारंगी चकत्ते नजर आते थे. मंदिर की सीढ़ियों पर खुदा था— 'यह पं. मनीराम, मनकोटी ने पुज्य पीताजी की स्मिर्ती में बनवाया.' मंदिर की तमाम ढलवान पर जंगली नरगिस के पौधे थे—धूप से नीम बेहोश होती तितलियां उन पर पंखड़ियों-सी चकराती थीं. हवा में तेल की, कपूर की, चीड़ की गंध थी. . . टुन टुन टुन! . . . क्यों, क्यों, क्यों!

चिड़िया के नर्म पंखों की फड़फड़ाहट चेहरे पर महसूस करती, चट्टान पर लेटी कुनू को क्षण भर को लगा था कि प्यार और ताकत से वह टुकड़े-टुकड़े हो जायेगी.

कुनू की एक और दोस्त थी, सरूली की मां परू घसियारिन, जो चट्टान पर थूक से अपनी दरांती तेज करती हुई उसे बताती थी कि उसकी सरू को आंतें उतरने की बीमारी लग गयी है. तेल-हेल सबसे मालिश करके देख लिया. अब बैदजी ने कहा कि उसे चूहे का मांस भून के खिलाव. परू घसियारिन आगे बताती कि चूहे का मांस बिचित्तर होता है, कि इतना, ई–ये देखो मेरे अंगूठे के नंग (नाखून) जितना टुकड़ा, तेल में छोड़ों तो फूल के हथेली जित्ता हो जाता है.

रात को खाना खाते-खाते उसने मां से पूछा था, "क्या तले जाने से कभी दाल की बड़ी फूलकर हथेली जितनी हो सकती है?"

मां ने कहा था कि नहीं, फिर कुछ सोचकर कहा था कि हां, भाबर में पंजाबी दूकानदार बेचते हैं हथेली जितनी बड़ियां. . . खूब ही लाल-काली मिर्चवाली, पर वो तोड़ के बनायी जाती हैं. तू खा नहीं सकेगी, बड़ी मिर्च डालते हैं. . . पंजाबी उसमें. . . फिर वह पिता को पंजाबी दूकानदारों की बेईमानी के बारे में बताने लगी थीं, कुनू उनसे बिछड़ गयी थी.

एक और दोस्त थी कुनू की—हसीना भंगिन, उसकी आंखें सलेटी थीं. कुनू को हसीना दुनिया की सबसे खूबसूरत भंगिन लगती थी. उसका भूरे बालोंवाला लड़का मुर्रे जब-जब बीमार पड़ता था, वह लड़की को पांच पैसे देती थी, मंदिर में चढ़ाने को. उसकी नौ लड़कियों के बाद मुर्रे पैदा हुआ था, और उसके जनम पे उनके पांच सूअर कटे थे, और पचास बोतल कच्ची आयी थी. माल्टे की खट्टी-मीट्ठी होती है कच्ची और क्या? एक ही बोतल में तीन लोग टुन्न खेंच जाते हैं. भाबर से आती है ट्रकों पे.

कुनू ने जब रात को बताया था कि कच्ची पीने से एक बार में तीन लोग टुन्न हो सकते हैं, तो मां के होंठ बड़ियों की तरह सिकुड़ गये थे, और उन्होंने कहा था कि अब वह सयानी हो रही है, और उटंग फ्रॉक पहनकर अकेले इधर-उधर डोलते फिरने की उसे कोई जरूरत नहीं. अगले दिनों में दर्जी को बुलाकर उसके लिए सलवार-कमीज की नाप दे दी गयी थी, और पापलीन की चार बास्कट जैसी तंग बंडियां कुर्ते के भीतर पहनने का उसे आदेश हुआ था. बंडी पहनकर उसे लगता कि उसके सीने पर किसी ने रस्सियां बांध दी हैं. . . और वह अब सांस नहीं ले पायेगी! --

कुनू सपने में एक लड़की को देखती, जो लाल सीनेवाली चिड़िया के साथ टूटे आसमान में मंडरा-मंडराकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

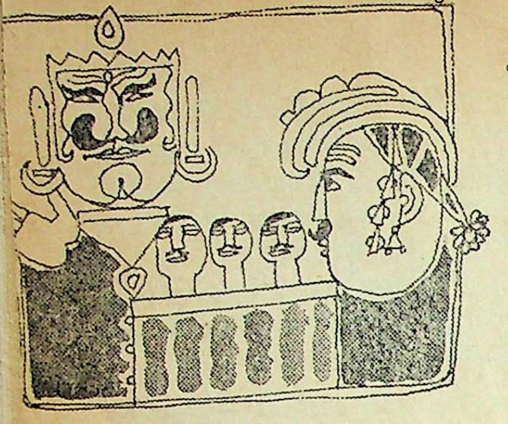

जापान की लोक-कथा

दो मेंढक

बहुत समय पहले जापान में दो मेंढक रहते थे. एक ओसाका शहर के तालाब में, दूसरा क्योटो शहर की एक छोटी-सी नदी में. दोनों इतनी दूर रहते थे कि एक-दूसरे के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे. एक दिन उन दोनों के मन में एक साथ यह बात आयी कि हमें बाहर निकलकर दुनिया को देखना चाहिए. ओसाका में रहनेवाला मेंढक क्योटो शहर को देखना चाहता था और क्योटो में रहनेवाला मेंढक ओसाका शहर को. इस तरह बसंत के सुहावने मौसम में वे दोनों एक सुबह क्योटो और ओसाका को जोड़नेवाली सड़क पर निकल पड़े.

रास्ते में एक बहुत ऊंचा पहाड़ पड़ता था, जिसे पार करने के बाद ही एक शहर से दूसरे शहर में जाया जा सकता था. उसकी चोटी पर पहुंचने में दोनों मेंढकों को बड़ा समय लगा और बड़ी मेहनत करनी पड़ी, पर आखिरकार वे उस चोटी पर पहुंच ही गये.

पहाड़ की चोटी पर एक मेंढक का दूसरे से आमना-सामना हुआ तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ. वे कुछ क्षण चुपचाप एक-दूसरे को देखते रहे और फिर बातें करने लगे. तब यह भेद खुला कि वे अपने घरों से इतनी दूर कैसे एक-दूसरे से मिल रहे हैं. उन्हें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वे दोनों एक-दूसरे के शहर के बारे में जानना चाहते हैं. उन्हें कोई खास जल्दी नहीं थी, इसलिए वे एक ठंडी और गीली जगह में पांव पसारकर लेट गये ताकि दोबारा यात्रा शुरू करने से पहले खूब आराम कर लें. बातचीत के दौरान ओसाका के मेंढक ने कहा, "कितने अफसोस की बात है कि हमारे कद बड़े नहीं हैं. अगर

रहती . . . 'क्यों-क्यों-क्यों?' पर उसके सपनों में किसी को रुचि न थी. पिता खोये-खोये खाना खाते या रेडियो सुनते रहते, भाई रामपुरी चाकू की किस्मों, छर्रेवाली बंदूकों और क्रिकेट में डूबा रहता, मां बड़ी-मुंगोड़ी और अचार या तो बनाती रहती या उन्हें बचाने का जतन करती रहती. घर में हर मर्तबान, हर कनस्तर का मुंह कसकर बंधा रहता. नमी के विरुद्ध, हवा के विरुद्ध, समय के विरुद्ध, उसके विरुद्ध! उससे कहा गया कि वह अचार न छुआ करे, क्योंकि अब उसके समय-बेसमय छूने से अचार बिगड़ सकता है. वह बड़ी-मुंगोड़ी के डिब्बे न खोले, क्योंकि वह उन्हें वापस कसकर बंद नहीं करती.

अचार, बड़ी-मुंगोड़ी, क्रिकेट, चाकू, छुरों और रेडियो के परे कुनू जंगली बिल्ली-सी खूंखार और उग्र होने लगी थी. शाम को साढ़े छह बजे पंचायती कार्यक्रम में एक आवाज कहती, "हां तो पंचों!" . . . और पिता स्वयं को मक्की की किस्मों, बैंगन की निराई के तरीकों और परिवार नियोजन की नकियाती वार्ताओं के सुपुर्द कर देते, भाई कमेंट्रीवाले की अंग्रेजी की नकल करता कागज की गेंदें इधर-उधर फेंकता रहता, कभी गुगली, कभी स्पिन. मां चुपचाप बैठी बुनती रहती या पिता से लड़ती रहती.

कुनू को लगता, वह उकताहट से मर जायेगी.

कुनू बेहद चिड़चिड़ी हो गयी थी. पतझड़ के बाद अचानक बढ़ता जाड़ा. पहाड़ का गीला जाड़ा, सख्त-दिल शामें. हवाओं में हरदम भरी रहती जलती पत्तियों की कड़वी बास. माली सूखी घास से पाइपें लपेटने लगे थे. पानी बर्फ बन जाये तो, लोहे के पाइप फाड़ देता है. कुनू को लगता, वह भी बर्फ से जमे पाइपों की तरह फट जायेगी कभी.

रात को कुनू की नींद खुलती, तो बाहर छत के साथ-साथ चलती नालियों से टपकता पानी पतली-लंबी सलाखों की तरह बर्फ बना चकमता. चांद भुतहा लगने लगा था. और हवा जो कभी उसकी दोस्त थी, अब कमरे में क्रुद्ध आक्रोश से घुसकर उसकी दरी को छाते-सा फुला देती. पतले रात के कपड़ों में सिहरती कुनू अपनी खिड़की पर खड़ी देर तक अंधेरे में वह पगडंडी खोजती, जो मंदिर के पिछवाड़े की उस चट्टान तक जाती थी.

जुकाम से जमी छाती पर विक्स मलते-मलते मां ने उससे कहा था कि ऐसी जानलेवा सर्दी में खिड़की को शिव मंदिर के पट की तरह 'चौपाण' खुली रखना कतई जरूरी नहीं. वैसे भी वह सयानी हो गयी है . . . और सयानी लड़कियों की खिड़कियां रात को बंद ही भली!

कुनू की बंद खिड़की के नीचे उन्हीं दिनों रात गये एक नामहीन जानवर आकर सहरा-सहराकर डरावने स्वर से रोने लगा था . . . 'हू हू हू' . . . रात दर रात. चौकीदार का कहना था कि उसके रहते परिंदा पर नहीं मार सकता बंगले में, जानवर की तो बात ही क्या? फिर मां-पिता-भाई सभी तो भर नींद सोये चले जा रहे थे. तब वह नामहीन जानवर सिर्फ उसी की खिड़की तले रातों में क्यों रोता था? कुनू को लगने लगा कि वह कहीं धीमे-धीमे पगला तो नहीं रही?

कुनू ने खिड़कियां कसकर बंद कर लीं, दरवाजा बंद कर लिया, दरी हटवा दी, जो हवा को शरण देती थी. फिर उसने खिड़की के कांचों पर भी मोटे रंगीन कागज चिपका दिये. दुछत्ती का उसका कमरा अब एक मजबूत किला था, धूसर परछांइयों से भरा हुआ आभरणहीन. नंगे फर्श, नंगी दीवारोंवाला.

कुनू घंटों अपनी चारपाई पर दीवार की ओर मुंह किये लकड़ी के कुंदे-सी पड़ी रहती. "पर्दों की भी क्या जरूरत है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे कद बड़े होते तो हम एक-दूसरे का शहर इसी पहाड़ पर से देख लेते और यह अंदाजा लगा लेते कि वह शहर वहां जाकर देखने लायक है भी या नहीं."

"अरे, यह तो बहुत आसान है." क्योटो के मेंढक ने उत्तर दिया, "हम एक-दूसरे का सहारा लेकर पिछली टांगों पर खड़े हो जायें तो मजे से एक-दूसरे का शहर देख सकते हैं."

ओसाका के मेंढक को यह बात इतनी पसंद आयी कि वह तुरंत उचककर पिछली टांगों पर खड़ा हो गया और क्योटो के मेंढक ने भी ऐसा ही किया. दोनों मेंढक एक-दूसरे के कंधों पर अपने अगले पंजे टिकाकर खड़े हो गये.

अब दोनों मेंढक पहाड़ की चोटी पर सीधे खड़े थे और इस डर से कि कहीं गिर न जायें, दोनों ने एक-दूसरे को मजबूती से पकड़ रखा था. क्योटो के मेंढक की नाक ओसाका की ओर थी और ओसाका के मेंढक की नाक क्योटो की ओर, लेकिन मेंढकों की आंखें तो पीछे की ओर हो गयीं और वे एक-दूसरे का शहर देखने के बजाय अपने-अपने शहर को ही देखने लगे. मगर यह बात उन मूर्ख मेंढकों की समझ में नहीं आयी.

"मित्र!" ओसाका का मेंढक बोला, "क्योटो तो बिलकुल ओसाका जैसा है. फिर यात्रा का कष्ट उठाने से लाभ क्या? मैं तो यहीं से घर लौट जाऊंगा."

"मुझे भी ओसाका बिलकुल क्योटो जैसा दिखायी दे रहा है. अगर मुझे पहले से मालूम होता कि ओसाका भी क्योटो की ही नकल है, तो मैं कभी इतनी दूर चलकर न आता."

क्योटो के मेंढक ने कहा, "मैं भी यहीं से अपने घर लौट जाऊंगा."

इतना कहकर दोनों मेंढकों ने अपने पंजे एक-दूसरे के कंधों पर से हटाये और वे दोनों फिर घास पर लेट गये. थोड़ी देर आराम करने के बाद उन्होंने एक-दूसरे को नमस्कार किया और अपने-अपने शहर में लौट आये.

जीवन भर वे इसी बात में विश्वास करते रहे कि ओसाका और क्योटो मटर के दो दानों की तरह एक जैसे हैं, पर वास्तव में दोनों शहर एक-दूसरे से इतने ही भिन्न हैं जितने कि कोई दो शहर हो सकते हैं. □

प्रस्तुति ▣ सुधा उपाध्याय

उसने मां से कहा था, "जबकि न खिड़की खुली रहती है, न दरवाजा?"

खुशनुमा पर्दे घर में कहीं और टांग दिये गये थे.

कुनू कल्पना करती कि उसकी चारपाई उसका ताबूत है और यह ध्वनिहीन ठंडा हरा कमरा उसका मकबरा, तो उसे लगता, उसके बदन से एक हल्की सीलनभरी गंध फूटने लगी है, नोना झिरती दीवालों की सी गंध. वह देर तक रगड़-रगड़कर नहाती रहती. दीवार के भीतर रहनेवाली छिपकलियों की तरह उसकी रंगत पीली पड़ गयी थी.

चिंता भरी आंखों से उसे देखकर मां कहती, "न कहीं आना न जाना, न रिश्तेदारों, मेहमानों के आगे निकलना, इतना भी पढ़ता है भला कोई? बीमार पड़ जायेगी तू!" कुनू ने उत्तर में सख्ती से बाम और च्यवनप्राश उठाकर फेंक देने को कहा था. मां को पूरी यकीन बना रहा कि उसके गुस्से की जड़ एनीमिया है. इस उम्र में लड़कियों को अक्सर हो जाता है, मां जैसे अपने आपको समझाती.

लंबे लड़के की आंखें शहद के रंग की थीं. . .धूप में गौर से देखो तो पुतलियों के गिर्द हरे छींटे-से भी नजर आते थे. एक लंबी धूल भरी किताबों की नसेनी थी, जिस पर चढ़कर झिझकता हुआ वह कुनू के किले तक आया था. कुनू ने उस रोज बाल धोये थे, लंबे-घुंघराले, गांठदार बाल. वह बेतरह बिगड़ पड़ी थी, उन्हें सुलझाते हुए, "देखते नहीं, कितनी किताबें हैं यहां, और किताबें क्या अपने सिर पर रखूंगी मैं?" लड़का गोरैया की तरह टेढ़ी गर्दन किये उसे तनिक विस्मय से ताकता रहा, "तुम्हारा दिमाग ज्यादा पढ़ने से खराब हो गया है." मुस्कराते हुए उसने कहा था. कुनू अप्रतिम हुई. औसतन वह गुस्से से गुर्राती थी तो लोग इधर-उधर हो जाते थे. पर लड़का उसी के पलंग पर बैठा मुस्कुराता रहा, "चलो भाई, बहुत हुआ." उसने कुनू की बेढंगी कफनी जैसी पोशाक का छोर छुआ. उसके हाथों में आवेग या उत्तेजना नहीं थी. वह तो उसे ऐसे थपथपा रहा था, जैसे चतुर साईस बिदकती घोड़ी को सहलाता है. उसकी पलकें हल्की रोशनी में सुनहरी लगती थीं. पलकों के नीचे उसकी आंखों में हंसी थी, "चलो भाई बहुत हुआ." फिर हंसते-हंसते उसने सालों से बंद एक खिड़की खोली, फिर दूसरी.

जकड़ी हुई, जमी हुई खिड़कियां तनिक कठिनाई से खुलीं. लड़के के हाथ धूल से अंट गये थे. गाल पर धूल का स्याह डिठौना हो मानो. सालों से बाहर छटपटाती हवा कमरे में आ घुसी थी. पतझड़ के पत्तों की तरह कमरे भर में उड़ते रह गये उसके कागज. लड़का उससे कोई आठ इंच बड़ा था. शहद के रंग की उसकी आंखें.

"चलो बाहर चलते हैं."

सालों बाद कुनू किले से निकलकर मंदिर की चढ़ाई चढ़ रही थी. अनभ्यस्त पैर, लगता था मन-मन भर के हो आये हों. पीछे कमरे भर में उड़ते रहे गये उसके कागज.

सलेटी चट्टान पर लेटकर उसने देखा कि आसमान अब भी वहां पर आकर टूटता था, हवा अब भी समंदर बन सकती थी. पर तभी लड़का उस पर हंस पड़ा. . . और कुनू का ध्यान समंदर से बिछल गया था. लड़के का निचला होंठ भरा-भरा और रसीला था, अंगूर के दाने की तरह. हंसे जाने पर रुआंसी और चिड़चिड़ी होती कुनू को अचानक लगा कि लड़के की हंसी रिहर्सल की हुई है, नाटकों की तरह—सुरों का एकदम सही-सधा उतार-चढ़ाव, न कम न ज्यादा. पर लड़का 'स' और 'श' पर तनिक तुतलाता था: उसने कहा "त्सुनो!" तो कुनू को लगा कि उसके होंठों पर चीड़ की खट-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका सर्वभाषा कहानी एवं लघुकथा प्रतियोगिता : 1984

पुरस्कार योजनाएं

कहानी प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार : 1500 रुपये
द्वितीय पुरस्कार : 1000 रुपये
तृतीय पुरस्कार : 750 रुपये
पांच सम्मान पुरस्कार : 400 रुपये प्रत्येक

लघुकथा प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार : 200 रुपये
द्वितीय पुरस्कार : 150 रुपये
तृतीय पुरस्कार : 125 रुपये
पांच सम्मान पुरस्कार : 100 रुपये प्रत्येक

सारिका कहानी मंच प्रतियोगिता : 1984

प्रथम पुरस्कार : 500 रुपये
द्वितीय पुरस्कार : 400 रुपये
तृतीय पुरस्कार : 300 रुपये
दस प्रोत्साहन पुरस्कार : 200 रुपये प्रत्येक

▣ विशेष

सारिका कहानी मंच के सदस्य अपनी रचनाएं सीधे हमें न भेजकर अपने महाविद्यालय/विश्वविद्यालय में स्थापित मंच के संयोजक और संरक्षक के माध्यम से भिजवाएं, जिसमें प्रमाणित किया गया हो कि रचनाकार सारिका कहानी मंच का सदस्य एवं संस्थान का छात्र है. शेष नियम अन्य प्रतियोगिताओं की भांति ही लागू होंगे. छात्र-छात्राएं किसी भी प्रकार की अन्य जानकारी के लिए अध्यक्ष, सारिका कहानी मंच, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 के पते पर पत्र-व्यवहार कर सकते हैं. वे अपनी रचना पर घर और संस्थान दोनों के पते लिखें.

नियमावली

1. इस प्रतियोगिता में हिंदी एवं सभी भारतीय भाषाओं के कथाकार समान रूप से भाग ले सकते हैं, लेकिन रचनाएं हमारे पास हिंदी में ही भेजी जानी चाहिए.
2. कहानी की शब्द-संख्या पांच हजार शब्दों से अधिक तथा लघुकथाओं की पांच सौ शब्दों से अधिक न हो तो यह सुविधाजनक होगा.
3. पुरस्कृत कहानियों, लघुकथाओं के प्रथम प्रकाशन का अधिकार हर प्रकार से 'सारिका' के पास सुरक्षित रहेगा. पुरस्कारों की घोषणा संभवत: अप्रैल, 1985 तक कर दी जायेगी.
4. कहानी/लघुकथा मौलिक एवं हिंदी तथा किसी भी अन्य भाषा में अप्रकाशित एवं अप्रसारित होनी चाहिए.
5. कहानी के साथ अपनी हस्तलिपि में यह प्रमाणपत्र भी भेजें—"मैं घोषित करता/करती हूं कि मेरी कहानी/लघुकथा (रचना का शीर्षक) मौलिक है एवं किसी भी भाषा में प्रकाशित अथवा प्रसारित नहीं हुई है. प्रतियोगिता का निर्णय घोषित होने तक इसे कहीं भी प्रकाशन अथवा प्रसारण के लिए नहीं भेजा जायेगा. मैं प्रतियोगिता के सभी नियमों से पूर्णत: सहमत हूं.
—नाम, हस्ताक्षर एवं पता
6. प्रतियोगिता में भेजी गयी रचनाएं लौटाना संभव नहीं होगा, अत: रचना की प्रति अपने पास सुरक्षित रखें.
7. रचना के साथ चित्र एवं परिचय तथा पत्र आदि न भेजें. इस विषय में निर्णय होने तक किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार भी न करें.
8. अपनी रचनाएं आप डाक से भेजने के अलावा 'सारिका कार्यालय' में 30 नवंबर, 1984 तक स्वयं आकर भी दे सकते हैं.
9. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम एवं सर्वमान्य होगा.
10. इस प्रतियोगिता में बेनेट कोलमैन एंड कंपनी के कर्मचारी एवं उनके निकट संबंधी भाग नहीं ले सकते.
11. रचना भेजते हुए लिफाफे पर पते की जगह नीचे प्रकाशित कूपन अवश्य चिपकाएं. आप जिस प्रतियोगिता में भाग ले रहे/रही हों, उसे छोड़कर कूपन पर बाकी शीर्षक काट दें. अन्यथा रचना प्रतियोगिता में शामिल नहीं की जायेगी.

▣ अंतिम तिथि : 30 नवंबर, 84

सारिका
सर्वभाषा कहानी/लघुकथा प्रतियोगिता
10, दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▣ व्यंग्यचित्र : चंदर

मिट्ठी सुइयां चिपक गयी हों, और चिड़चिड़ाहट घटने लगी. वह हवा को नहीं लड़के को सुनने लगी. उसकी कोमल तुतलाहट को, जो उसकी इस्पाती ताकत को छुपाती थी.

रात को लेटे-लेटे कुनू ने साफ महसूस किया कि लड़का भी सपने में उसे देख रहा होगा. वह सोयी नहीं, लेटे-लेटे छोटे शीशे में उसने अपने चेहरे का दायां प्रोफाइल देखा, फिर बायां. जब वह चट्टान पर लेटी थी, तो लड़का उसकी किस तरफ बैठा था भला? उसने नाखून न कुतरने का भी प्रण किया. सुबह मां ने अचरज से कहा कि आज तू दिन चढ़े तक कैसे सोती रही, तू तो...

पहाड़ों के पीछे सूरज डूब रहा था. पहाड़ों की लाल-लाल चोटियां मानो सन्निपात में तप रही हों. चट्टान की सलेटी छाती पर आज फिर लाल-लाल सीनेवाली उसकी वह चिड़िया बैठी थी. ढलते सूरज की ईर्ष्यालु, चितातुर और नर्मदिल किरणों का एक आखिरी गर्म, लाल स्पर्श. फिर सब गाढ़ा सलेटी होता चला गया.

"गाओ, तुम्हारी आवाज कितनी मीठी है," लड़का कह रहा था, "गाओ न!"

..क्यों क्यों क्यों?

"हिश्ट!" लड़के ने चिड़िया को ढीला मारकर उड़ा दिया. चिड़िया, जो कुनू के बीते दिनों की इकलौती चश्मदीद गवाह थी.

लौटने पर आज कुनू को लगा कि उसका कमरा घर के और कमरों की ही तरह हो गया था, साफ, हवादार, उजला. उसमें लड़के की महक थी—गर्म सोंधी रोटी की सी महक, सिंकती, हुई ताजा और तंदुरुस्त. कमरे के झक्क उजास में घुसकर लड़के ने फिर कहा, "गाओ न! गाओ, आओ, यहां पर बैठो."

कुनू के पिता भी खूब उजले कलफदार कपड़ों में बैठे थे. उनके बगल में बैठा लड़का पिता का जुड़वां भाई लग रहा था. कुनू को लगा कि उसकी छाती में घुमड़ता संगीत पत्थर हो गया है.

कमरे में लेटी कुनू के सीने में अथाह शांति थी, अथाह अंधकार. जहां वह लेटी थी, वहां से कमरे की खिड़की के परे मंदिर का ढलवान साफ-साफ दीखता था. ढलवान, जिस पर लड़के का हाथ थामकर वह ऊपर-नीचे भागी थी, तो आग और बर्फ के दो दरिया उसके माथे के भीतर बहने लगे थे. फिर लड़के ने उसकी चिड़िया को परे उड़ाकर उससे कहा था. "गाओ."

पिता तनिक हंसे थे.

कुनू के कमरे के बाहर बर्फ गिर रही है. प्यार भरी बर्फ. नन्हे-नन्हे पतिंगों से गाले रोशनी में हीरों की सी आग छोड़ते हैं. बर्फ की आग. एक नर्म दिल सफेदी के तले सब ढंक गया है. वे पदचापें, जो अधजागी रातों में कमरे से खिड़की तक फुसफुसाती थीं; वे कलम की खरोंचें, जो रात देर गये तक सफेद कागजों के सीनों पर पड़ती थीं.

क्या लूटने आया था दुश्मन? कुनू समझ नहीं पाती. शायद जब बर्फ की आग छत से फर्श तक कमरे को भर देगी, तभी पता चलेगा कि क्या चोरी गया है.

नींद की गहराइयों में डूबती कुनू ने देखा, खिड़की के बाहर द्वितीया का चांद हंसिये-सा तीखा था. . .और उतना ही धारदार. उसका कमरा, खिड़की खुली होने के बावजूद गर्म था, और उसका धड़कता दिल भोर के तारे की तरह धीमे-धीमे डूब रहा था.

नींद और जागने के बीच सांस से नाजुक उस आखिरी क्षण में कुनू ने जाना कि दुश्मन उसके किले का चप्पा-चप्पा जान गया है. और अब उसे कुनू से कुछ नहीं चाहिए...!

कुनू ने तभी यह भी जाना कि अब वह खुद दुश्मन को कभी भी, कुछ भी देने से इनकार नहीं कर सकेगी. उल्टे एक बाहरी मेहमान की तरह उसे उस सबके लिए शुक्रगुजार होना होगा, जो उसे मिल रहा है.

फिर कुनू सो गयी. □

● वामा, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

चलते-चलते

लंदन की नगर-सभा द्वारा आयोजित एक प्रीति-भोज में जब प्रसिद्ध सर्जन डा. आर्थर डिक्सन राइट से समस्त लंदनवासियों के स्वास्थ्य का प्याला पीने को कहा गया, तो वे बोले, "देवियों और सज्जनों, सर्जन का पेशा करते हुए मैं सच्चे दिल से यह कामना नहीं कर सकूंगा. . क्षमा करें!" □

▣ कल्पना आंचलिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▣ उर्दू कहानी

महबूब

• इस्मत चुगताई

महबूब!. . . मेरी मुराद फिल्म डायरेक्टर महबूब से नहीं, जिन्होंने 'मदर इंडिया' बनायी थी और न उस महबूब का जिक्र है, जिसकी तारीफों में शायर और अदीब जमीन व आसमान के कुलाबे मिलाया करते हैं, जिसके फिराक में आशिकों की सिट्टी गुम रहती है, जिसकी जुल्फों में घटाएं उलझी होती हैं, चेहरे पर चांद झिलमिलाता हैं, होठों पर गुलाब पंखुड़ियों और आंखों में आशिकों के दिलों को ताक कर गिरनेवाली बिजलियां भरी होती हैं. मैं तो फकत अपने बावर्ची का जिक्र कर रही हूं. बिजलियां नहीं कौंध सकती, क्योंकि उनकी आंखें नहीं, सिर्फ एक इकलौती आंख थी.

न जाने मां-बाप को उनका नाम महबूब रखने में क्या खूबसूरती सूझी. महबूब किसी जमाने में भी किसी के महबूब न रहे. वह तो सिर्फ छह बच्चों के बाप और एक बदमिजाज बीवी के शौहर थे. इसके अलावा वे बहुत ही बदहवास किस्म के बावर्ची भी रह चुके थे. हांडिया पकाने और पूरियां-कचौरियां तलने के बजाय वह किस्मत के मारे आकाओं को ज्यादा खुशी से तल देते थे. दुनिया में जहां और चीजें गधे के सिर से सींग की तरह गायब होती जा रही हैं, उसी तरह बावर्चियों का भी अकाल पड़ता जा रहा है. महबूब हर पेशा अख्तियार करने के बाद उसे अपने वजूद के लिए कातिल पाकर बावर्चीगीरी पर आ टिके थे.

महबूब खाना पकाने के मामले में बिल्कुल एक मनमौजी फनकार की हैसियत रखते थे. उनका फन निहायत नया और कुछ आर्ट के स्कूल से ताल्लुक रखता था, जैसे मॉडर्न पेंटिंग को देखकर आप ये नहीं बता सकते कि ये औरतें खड़ी हैं या गन्ने का खेत है, बिल्कुल उसी तरह महबूब के पकाये हुए खानें चखकर आप ये नहीं बता सकते कि कोरमा है, केला है या खड़े मसाले का गोश्त है. जहां तक मसालों का ताल्लुक है, वह खड़े-बैठे मसाले के सालन की बजाय कुछ उछलते-कूदते और ऊधम मचाते मसालों के खाने पकाते थे. सियासी पार्टियों की तरह हर मसाला बिल्कुल अकेला और महबूब और अछूता अपना रंग-ढंग और जोर दिखाता नजर आता. लहसुन, हल्दी, धनिया सब जुदा-जुदा सुर अलापते. मजाल है जो एक मसाला भी अपनी बू दूसरे पर हावी होने दे.

महबूब कभी मौसम की ताजा तरकारी नहीं लाते थे, ढूंढ़-ढूंढ़ के बे-मौसम की तरकारियां लाते. गाजर का मौसम तो वह सेमों की तलाश में सिर गाड़ी, पैर पहिया कर देते. शलजम के जमाने में गोभी के लिए परेशान रहते. पालक के मौसम में भिंडी तलाश करके लाते और अगर बहुत-सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरकारियों का मौसम हो तो मजबूरन हाल-गोश्त पका लेते.

घर की सास से महबूब की जन्म-जन्म की दुश्मनी थी. शायद सदियों से उनके साथ पैदा होकर हांडिया के बहाने उनका जी जलाते, भूनते, झुलसते चले आ रहे थे. बेचारी ने किसी जन्म में कोई निहायत डरावना पाप किया होगा, जिसकी सजा में महबूब उन पर अजाब बनकर पैदा हुए और शायद रहती दुनिया तक यूं ही पैदा होते रहेंगे. मगर वह सब्र के साथ महबूब को झेला करतीं. किस्मत का लिखा सबको भुगतना पड़ता है. इंसान की मजाल नहीं, जो सजा से बच जाये. बावर्चियों की किल्लत ने महबूब को तुनकमिजाज बना दिया था. कई बार उससे बचने की कोशिश की गयी. दूसरा बावर्ची आया, मगर जल्दी ही भाग गया और रिक्शा खींचने लग गया या किसी फैक्ट्री में गुम हो गया. महबूब रिक्शा खींचने में खुद इतने खिंच जाते कि बस! माशाअल्लाह एक-एक करके शहर की तमाम शरीफ बीवियों को नाले में गिरा चुके तो काफी तादाद में लोग उनकी रिक्शाबाजी के खिलाफ एक जबरदस्त मोर्चा बनाकर खड़े हो गये.

लिहाजा तमाम रिक्शायें औंधाने के बाद वह फिर बावर्ची के पेशे की तरफ लौट आये. जब कभी उन्होंने किसी

महबूब, 'मदर इंडिया' के डायरेक्टर! जी नहीं. शायरों के महबूब! जी नहीं, यह एक ऐसे महबूब की कहानी है, जो सिर्फ एक आंख वाले थे और जिन्हें सुनाई भी कम देता था, लेखिका के घर में बावर्ची थे और एक दिन पता चला कि वे एक कंपनी में प्रोडक्शन मैनेजर हो गये हैं. जिंदगी की विद्रूपताओं को अपने पूरेपन में उकेरती लाजवाब कथा——

और पेशे पर हाथ फेरना चाहा तो कोई न कोई कयामत आ गयी. उन्होंने फलों की छाबड़ी लगायी तो हैजा, जो शायद ताक में बैठा था, शहर में टूट पड़ा और म्युनिसपा लिटीवाले महबूब पर टूट पड़े. उन्होने मलाई के बर्फ का व्यापार शुरू किया तो फौरन काली खांसी और पेचिश की बीमारी शहर में फैल गयी. लोग उनकी कुल्फियों को देखकर ऐसे बिदकने लगे जैसे वह कुल्फियां नहीं, यमदूत की बंदूक से निकली हुई गोलियां हों. उन्होंने खरबूजों का ठेका लिया तो ओले पड़ गये. सिंघाड़े की ताल पर आस लगायी तो जोंकों ने हमला कर दिया. जो सिंघाड़े वह बेचते, उनमें सिंघाड़े कम और जोंकें ज्यादा तौल देते थे. जब कोई धंधा बैठ जाता तो वह सुस्ताने के लिए बावर्चीगीरी पर लौट आते. इत्तेफाक से उनका जब कभी दिवाला निकलता, अल्लाह उनका गम गलत करने के लिए उन्हें एक अदद औलाद दे देता, मगर दीवालों की रफ्तार का तो न उनकी बीवी मुकाबला कर सकी, न खुदा की कुरदत. बच्चा साल में एक ही पैदा हो सकता था, जबकि दीवाला खुदा के फजल व करम से साल में छह मर्तबा निकल जाता था.

महबूब का वजन अस्सी और बयासी पौंड के पास ही रहता था. कभी तोला, दो तोला बढ़ जाता तो कई मर्ज उन्हें हो जाते और वजन घट जाता. बकरी जैसी सूखी टांगें होने के बावजूद हमेशा चुस्त लखनउवा पाजामा और फौजी कमीज पहनते थे, क्योंकि उन्हें एक दफा ईद पर कुछ नयी कमीजें मिल गयी थीं. उसके बाद हर ईद पर नयी कमीज भी उन्होंने उसी फैशन की सिलवाई, क्योंकि उनकी शख्सीयत रौबदार हो जाती थी. तंग पायजामा का राज घर की सास ने एक दिन मालूम कर लिया कि ये पायजामा ऊपर से ढीला होता, मगर पायचे वह ऊपर से सी कर चुस्त कर लेते. यूं एक निहायत आराम का स्टोर रूम तैयार हो जाता. सास का खयाल था कि अनाज, सब्जी-तरकारी से लेकर गोश्त की बोटियां और सर्दियों के दिनों में मक्खन और घी की डलियां तक उसमें बड़े इत्मीनान से स्टोर की जा सकती हैं. खाने के सामान में से जो कमीशन काटते, वह जमा होता रहता. और दोपहर के खाने के बाद और रात को थैलियां झाड़ ली जातीं.

बड़े दांव-पेंच के बाद आखिर गुत्थी को हल ही कर लिया गया. महबूब ने एक छोटी-सी प्याली कोयले की डलिया में छिपा दी थी. चमचा चलाते-चलाते वह निहायत लचकदार पैंतरे से हर बार थोड़ा-सा घी उस प्याली में टपका देते थे. महबूब की होशियारी की दाद दिये बगैर नहीं रहा जाता. तरकारी का भी उन्होंने इंतजाम कर लिया. छीलते वक्त आलू के मोटे-मोटे छिलके उतारते. जरा-सा कुतरना होता, आधा आलू काटकर फेंक देते. छिलकों में दो-दो मटर चुपके से छोड़ देते. बोटियां चूंकि बाजार से आते ही चेक करके गिन ली जाती थीं, इसलिए वह समूची तो गायब न होतीं. हां, जरा सिकुड़कर छोटी हो जातीं.

वैसे वे सरासर कसमें खाते थे कि एक चीज भी चुराई हो तो कफन को लगे. जाहिर है तरकारियां और घी किसी शरीफ आदमी के कफन को नहीं लग सकता. लिहाजा उनकी कसमों से उनकी ईमानदारी को कोई सहारा नहीं मिला. वैसे खुदा की कसम पर लोग इस जमाने में भरोसा भी नहीं करते. इसलिए आपा उन्हें बच्चों की कसमें खिलातीं.

"मुन्ने की कसम." वह फट से मुन्ने की कसम खा जाते.

"वाह-वाह. . .मुन्ने की कसम क्या खा रहा है, सरवर की कसम खा." आपा झांसे में आने वाली आसामी नहीं थीं. वह जानती थीं कि मुन्ना पैदाइशी गंजा है. फुल्की-सा पेट, डेढ़ आदमी की खूराक फूंक देता है, मरने का कतई इरादा नहीं रखता था. चाहे कितनी भी झूठी कोई कसमें खा ले, वह डटा रहेगा. डॉक्टरों ने जो इलाज बताये, वह अगर महबूब की सात पुश्तें भी जिंदा होकर जोर लगायें तो नहीं हो सकता. सबको मालूम है वह कभी उठकर नहीं भागेगा, कभी कोई काम न कर सकेगा. उसकी जिंदगी एक बेमानी नुक्ता है, जिसके आगे-पीछे कोई जुमला नहीं. और महबूब बड़ी दरिया-दिली से उसकी झूठी कसमें खा सकता था.

मगर सरवर, जो नवीं जमात में पढ़ता है, जिसके अंग्रेजी फैशन के बाल थे और नेकर पहनता था, खानदान में बली

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहद की हैसियत रखता था, उसकी सच्ची कसम भी दिलाओ तो महबूब की इकलौती आंख में खून उतर आता. फिर उसकी गूंगी आंख भी सिसकियां भरने लगती और वह नौकरी छोड़ने पर तैयार हो जाता. सरवर ही की खातिर वह चूड़ीदार पायजामा पहनता और कोयले की मटकी में घी की कटोरी छिपाता. एक आंख से महरूम होने के अलावा महबूब कुछ ऊंचा भी सुनता था.

उस दिन आपा ने नीली आंख के खिलाफ मोर्चा कायम कर दिया. ये आंख यकीनन किसी काने अंग्रेज के लिए बनी होगी. इसलिए उनका खयाल था, उसको लगाने के बाद महबूब बिल्कुल गोराशाही जमाने का लाल साहब बन जाता और बावर्चीखाने को लूटने लगता. यही नहीं, वह ब्रिटिश पालिसी को मुकम्मल तौर पर कामयाब बनाने के लिए सास-बहू में फूट डलवाकर अपनी चांदी भी कर लेता.

"बड़ी बेगम साहब, गोश्त में क्या पड़ेगा?" वह सास से पूछता.

"मेथी, पालक. . .और हां, हरी मिर्चें बीच में से चीर के डालना, हमेशा की तरह बंद न डाल देना." सास कहतीं.

फिर वह संभलकर बहू से पूछता, "दुल्हन बी, गोश्त में क्या पड़ेगा?" वह सास-बहू के अलग पसंद के चक्कर में पड़कर कद्दू-गोश्त पकाकर उसमें खड़ी मिर्चें डाल देता. जाहिर है, कद्दू देखकर पूरा घर बिकदने लगता. महबूब की पुकार होती और वह कतई बुत बना हुआ हाजिर होता.

"क्यों रे कम्बख्त, पालक-मेथी के बजाय अपना सिर डाल दिया गोश्त में!" सास चिल्लाती.

"सरकार, दुल्हन बी ने कहा था, टमाटर डालियो."

"तो फिर टमाटर क्यों नहीं डाले?" बहू पूछती.

"हुजूर, बड़ी बेगम ने कहा था, पालक-मेथी पड़ेगी." वह बड़ी झुंझलाहट से कहता, "तो पालक-मेथी क्यों नहीं डाला मुर्दे?" सास पूछती.

"अब सरकार मेरी तो बड़ी मुसीबत है. पालक-मेथी डालता तो बेगम चीखतीं और टमाटर डालता तो बड़ी बेगम चिल्लातीं. आप ही बताइए किसका हुक्म मानूं?" वह चिढ़ कर जवाब देता.

मैं छुट्टियों में गयी तो घर में एक कयामत मची हुई थी. छोटी बाजी अपने साथ लखनऊ से कोई चौदह बरस की लौंडिया ले आयी थीं. अजब पटाखा थी लौंडिया. दिन भर हैलो-हैलो करती फिरती. न जाने क्या जोड़-तोड़ किये मुर्दार ने कि लौंडिया के पैर भारी हो गये.

एक दिन शाम को घर लौटी तो महबूब ने चाय की ट्रे सामने रख दी. फिर निहायत शर्माते मुस्कराते हुए अंदाज में तेल की बदबूदार जलेबियों की प्लेट सरका दी. मेरा दिल धक् से रह गया, जब भी महबूब की बीवी आबादी बढ़ाती, मुझे दौरा-सा पड़ने लगता.

"लड़का कि लड़की?" मैंने जलकर पूछा. महबूब छुई-मुई की तरह लुढ़क गया.

"ऐ हे, बोलता क्यों नहीं. . .?"

"मैंने जहूरन से निकाह पढ़वा लिया."

"ऐं?" मैं ऐसी उछली कि चाय की प्याली खड़खड़ा के रह गयी.

"तो क्या करता सरकार?" महबूब ने दांत निपोरे और मेरे लेक्चर को अहमक की सोच समझ कर टाल गये— एक तपेदिक की मारी मनहूस बीवी तो संभाली नहीं जाती मुर्दे से, एक और कर ली और वह भी भरी नाल की बंदूक है. या खुदा, अब ये डबल रफ्तार से धरती का बोझ बढ़ाने पर तुल जायेगा, रहम कर खुदा.

कई साल मेरा जाना उधर न हो सका. यूं ही उड़ती हुई खबर सुनी कि महबूब की पहली बीवी मर गयी. बच्चे मस्जिद के सामने भीख मांगते हैं. सरवर बंबई भाग गया. फिर सुना कि महबूब भी आ गये हैं. किसी फिल्म के दफ्तर में चपरासी हो गये हैं. मुझे एक दिन फेमस स्टूडियो में मिले, कहने लगे, "घाटकोपर में एक खोली मिल गयी है. सरवर आवारा निकल गया है. मुन्ना, मां के साथ अल्लाह को प्यारा हो गया. जहूरन हर्राफा किसी काम की नहीं." वही चुस्त पाजामा पहने हुए थे., मिलेट्रीनुमा कमीज पर भूरी गांधी कैप का इजाफा हो गया था. सालों बाद मिले तो एक दूसरी छोटी-सी कंपनी ने कुछ प्रोडक्शन मैनेजर के ओहदे पर नजर आये, अंदाज भी बदले हुए. दो साल पहले चुन्नी बीवी कहते थे, अब आपाजी कहने लगे.

अभी पिछले इतवार को महबूब फिर मिल गये, मैं तो पहचान भी न सकी. चुस्त पाजामा तो वही था, मगर उस पर निहायत साफ अचकन डांटे हुए थे. हाथ में पांच सौ पचपन का डिब्बा था, आंख के बेतुकेपन को काला चश्मा ढके था, "बेबी को काम मिल गया है." उन्होंने खीसें निकालकर पास खड़ी हुई गुड़िया की तरफ इशारा किया. और मेरी अक्ल कलाबाजी खा गयी.

इन दिनों मोहनी बाला हमारी फिल्म में साइड हीरोइन का काम कर रही है. आम फिल्मी हीरोइनों की तरह उस पर चर्बी की तहें चढ़ गयी हैं. शाम को ये लंबी मोटर में जीन्स और शर्ट पहने, काला चश्मा लगाये निकलती हैं तो लोग मोटर के सामने आ जाते हैं. महबूब मियां को अंकल कहती हैं.

और जब महबूब मियां, बेबी सेट पर आ जाते हैं तो सारा यूनिट खड़ा हो जाता है, मगर उनके जाते ही लोग फट पड़ते हैं, "बड़ा बदमाश है. तीन चौथाई ब्लैक लेता है. उठक-बैठक अलग करवाता है."

बच्चे शानदार स्कूल में पढ़ते हैं. सरवर मोटा ताजा हो गया है. मोटर दौड़ाता फिरता है और एक्स्ट्रा लड़कियों के साथ गुलछर्रे उड़ाता है. दो फ्लैट बांद्रा में हैं, एक पैडर रोड पर. थाने के पास जमीन लेकर फिल्म स्टूडियो बनाने का इरादा है. मगर मैं जब बेबी का ब्लैक रुपया उन्हें चोरी-छिपे देने जाती हूं तो बेअख्तियार निगाहें उनके चुस्त पाजामे पर जम जाती हैं. यकीनन, अब वहां आटे-दाल और तरकारी के छिलकों के बजाय खड़खड़ाते नोट भरे होंगे. □

● रूपांतर : अशफाक अहमद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

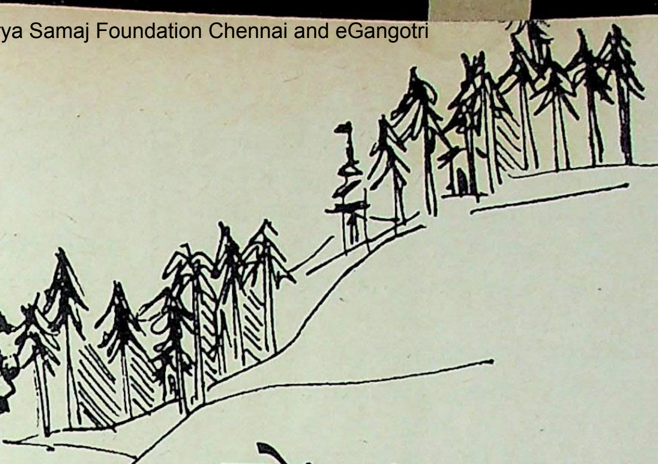

रास्ता

शशिप्रभा शास्त्री

रास्ते का लंबा या छोटा लगना उसकी दूरी पर इतना निर्भर नहीं करता, जितना उस व्यक्ति पर निर्भर करता है, जिसके साथ आप चल रहे हैं. प्रस्तुत है ऐसे ही कुछ खट्टे-मीठे अनुभवों की एक यात्रा-कथा

छोटी बहन के श्वसुर मुरारी बाबू के घर आने पर अविनाश के द्वारा उनकी काफी अभ्यर्थना की गयी...

सुबह शैय्या-चाय, फिर भव्य नाश्ता, दुपहर को लजीज खाना, तीसरे पहर फिर वृहद् चाय और तदुपरांत रात्रि-भोज. अविनाश को यह सब करना अच्छा लग रहा था, मुरारी बाबू कब-कब उसके घर आते हैं, यह तो संयोग से उन्हें मसूरी में अपने मित्र के दो बच्चों से मिलने का काम था, सो वे मसूरी जाते हुए बीच में दो दिन उसके यहां डोईवाला ठहर गये थे. अपने साथ मुरारी बाबू ने उसे मसूरी चलने की दावत दी, तब भी उसने सहर्ष स्वीकार लिया, मुरारी बाबू की किसी भी बात से इनकार करना या बहाना बनाने का प्रश्न ही नहीं था.

चलते हुए पत्नी ने सलाह दी, "राधे को भी साथ ले जाओ. हो सकता है, तुम्हारे दोस्त के यहां, जहां तुम बाबूजी को लेजाकर ठहराओगे, इन दिनों कोई नौकर न हो." पत्नी की बात मान लेना अच्छा ही हुआ, मसूरी में दुर्गानाथ के यहां उन दिनों नौकर छुट्टी पर गया हुआ था. पत्नी मैके चली गयी थी और सबसे ऊपर मित्र स्वयं बुखार के कारण शय्या ग्रस्त थे.

पहुंचते ही राधे ने चाय तैयार की, नाश्ता सजाया और पहुंचने के एक-डेढ़ घंटे बाद ही अविनाश मुरारी बाबू को लेकर उनके बताये स्कूल में बच्ची से मिलाने ले चला. यह स्कूल घर के पास पड़ता था, पर इस समय रास्ता लंबा प्रतीत हो रहा था, क्योंकि पहाड़ों पर अंधेरा जल्दी ही उतर आता है. इस मार्ग में सड़क टूटी हुई थी और खड्ड की तरफ नीचे की ओर कुछ नये मकानों का निर्माण चल रहा था.

सामने से आते हुए किसी आदमी से स्कूल के बारे में पूछा तो उसने बताया कि पास ही है.

मुरारी बाबू ने कहा, "पास होगा. हां, पहाड़ों में मकानों की यह सिफत होती है कि जगह पास नजर आती है पर उस तक पहुंचने के लिए रास्ते बड़े घुमौवल होते हैं. हमें तजरबा है, हमारी काफी जिंदगी पहाड़ों पर ही कटी है." वे अपनी छड़ी ठकठकाते हुए धीरे-धीरे बढ़ रहे थे.

"जिंदगी की मंजिल को पाने की भी शायद यही सच्चाई है." अविनाश होंठों ही होंठों में बुदबुदाया.

"आपने कुछ कहा?" मुरारी बाबू बढ़कर साथ आ गये थे.

अविनाश ने अपनी बात नहीं दोहरायी, कहा, "अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर नहीं है, बस आ ही पहुंचा."

"चलिए अच्छा है. जिस बच्ची से हम मिलने जा रहे हैं, वह करीब ग्यारह साल की है." मुरारी बाबू बच्चों के बारे में बताने लगे थे, बच्ची शिखा इसी साल आयी है, इसका भाई मसूरी में पहले से ही पढ़ रहा है. बच्ची थाई जबान बोलती है. मालूम नहीं, अभी इसने इधर की जबान सीखी होंगी या नहीं."

"बच्चों की भाषाई पकड़ काफी तेज होती है. अब तक उसने काफी कुछ सीख लिया होगा, आप देखेंगे." अविनाश ने यों ही प्रस्तुत किया.

"हो सकता है." बातें किन्हीं दूसरे मुद्दों पर भी हुईं. और बातों ही बातों में दोनों ने देखा, वे स्कूल की बिल्डिंग के दरवाजे पर खड़े हैं. लैंपपोस्ट की रोशनी में घड़ी देखी, पौने सात बज रहे थे. पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि बच्ची शिखा दो-चार मिनट पहले ही अपनी अध्यापिकाओं और दूसरी लड़कियों के साथ पास की ही एक दूसरी बिल्डिंग में किसी फंक्शन में सम्मिलित होने ले जायी गयी है.

"आप लोग कल सवेरे नौ बजे आ जाइए. हम लड़की से कह रखेंगे." चपरासी ने मुरारी बाबू की ढलती उम्र की परेशानी को भांप लिया था.

अगले दिन सवेरे नौ बजे तक बच्चों के स्कूल फिर पहुंच जाना था, पर मुरारी बाबू आठ बजे तक सोये पड़े थे, जगाने की हिम्मत नहीं हुई. काम उन्हीं का है, उन्हें ही इसकी चिंता होनी चाहिए, पर चिंता अविनाश को ही विशेष थी, वह सिर्फ दो दिन की छुट्टी लेकर आया था और दो दिन में ही मुरारी बाबू का सब काम समाप्त करवा कर उन्हें वापस ले जाना चाहता था. राधे से उन्होंने कुछ नाश्ता बनाने के लिए कह दिया, साथ ही कहा कि वह चुपके से देख ले कि मुरारी बाबू उठे या नहीं, राधे ने देखा कि मुरारी बाबू जगे पड़े थे.

"साहेब, चाय लाऊं?" मौका देखकर उसने पूछ लिया.

"ले जाओ." मुरारी बाबू ने स्वीकृति दे दी तो राधे और अविनाश दोनों को खुशी हुई. आज राधे को भी साथ चलना था. मसूरी देखने का यह उसका पहला साबका था, इसलिए सब काम जल्दी ही निबटाने थे. मित्र को पथ्य इत्यादि देने का काम भी राधे का ही था.

मुरारी बाबू की शय्या-चाय निबटाने के उपरांत उन्हें नाश्ते से निवृत करा लेने के लिए पर्याप्त कौशल और धैर्य अपेक्षित था, क्योंकि किसी भी काम को मुरारी बाबू हड़बड़ाहट में करने के पक्षधर नहीं थे, सब काम वे धीरे-धीरे ही करते. चाय पी लेने के बाद नाश्ता तैयार होता देखने के लिए वे रसोईघर में पहुंच गये और दस तरह की नुक्ताचीनी करके राधे को नये-नये सुझाव देने लगे.

नाश्ते के समारोह से निवृत्त हो जाने के बाद आज की यात्रा का श्रीगणेश जिस समय हुआ, उस समय दस बजने में दस मिनट शेष थे. सड़क पर पहुंचकर अविनाश ने याद दिलाया, "कल स्कूलवालों ने नौ बजे तक पहुंचने के लिए

कर्नाटक की लोककथा

गांठ बांधी बातें

एक गरीब आदमी का गुजारा नहीं चलता था. एक दिन उसकी पत्नी ने उसे चार आने दिये और कहा कि जाओ कोई धंधा करो, जिससे कमाई हो.

रास्ते में एक राहगीर से उसकी दोस्ती हो गयी.

वह पते की बात बेचता था. एक बात का दाम एक आना. उसने इकन्नी बचाकर तीन आने उसके हवाले किये. राहगीर ने कहा, "मरे हुए को फेंक आना चाहिए. राजा से झूठ नहीं बोलना चाहिए. बीवी को सच बात नहीं बतानी चाहिए. इन तीनों बातों को गांठ में बांध लो."

रास्ते में एक आदमी ने उससे पूछा, "कुछ काम करोगे?"

"हां."

"तो आओ मेरे साथ. गांव के चौधरी बुला रहे हैं."

यह चौधरी के पास गया. चौधरी ने कहा, "देखो, मैं तुम्हें तीन रुपए दूंगा, बदले में तुम्हें एक लाश को कहीं दूर फेंक आना होगा."

उसे पते की पहली बात याद आयी और वह लाश फेंक आने के लिए राजी हो गया. फेंकने से पहले उसने लाश की तलाशी ली तो उसे रुपयों से भरी एक थैली मिली.

थैली ले वह अपने गांव वापस आ गया, पत्नी ने थैली देखकर पूछा, "इतने रुपये कहां से मिले?"

उसे पते की तीसरी बात याद आयी. उसने कहा, "रास्ते में भूख लगी तो मैं मदार के पत्तों का दूध पीने लगा. मदार की जड़ में यह थैली रखी हुई थी."

भला औरत के पेट में कोई बात रह सकती है क्या? वह दौड़ी-दौड़ी पड़ोसिन से कह आयी, पड़ोसिन ने अपने गरीब पति को धिक्कारा कि तुम निखट्टू के निखट्टू ही रहे. जाओ पड़ोसी की तरह कुछ रोजगार करो.

उसका पति सारी बात जानकर घर से बाहर निकला, मदार के पौधे ढूंढकर उसने उनके पत्तों का दूध पिया. और पीते ही वह मर गया.

इस बात को लेकर उसकी बीवी राजा के पास गयी. फरियाद की कि पड़ोसी के कहने में आकर उसके पति ने मदार का दूध पी लिया और मर गया.

राजा ने पड़ोसी को बुलवाया. उसे पते की तीसरी बात याद आयी कि राजा से सच बोलना चाहिए, इसलिए उसने सारी बात सच-सच बता दी. राजा ने फैसला किया कि इसकी कोई गलती नहीं है, मरनेवाले को पता कर लेना चाहिए था कि क्या पीना चाहिए, क्या नहीं. राजा ने उसे छोड़ दिया.

दोनों पति-पत्नी सुख से रहने लगे. □

● प्रस्तुति : नमिता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा था."

"ठीक है, जल्दी क्या है; पहुंच ही जायेंगे." क्लब वाली सड़क पर राघे सहित दोनों धीरे-धीरे बढ़ते चले जा रहे थे. राघे के हाथ में थमे झोले में मिठाई के दो डिब्बे थे.

स्कूल पहुंचने पर बच्ची से मिलने की समस्या आज भी उसी रूप में सामने खड़ी थी यानी नाश्ते के बाद तमाम लड़कियां आज चर्च के संडे स्कूल के लिए जा चुकी थीं. मुरारी बाबू और अविनाश खेल के मैदान में पत्थर की बेंच पर बैठे इंतजार करते रहे. राघे कुछ दूर पेड़ के नीचे बैठा था. एक घंटा, दो घंटा, ढाई घंटा—प्रतीक्षा करते-करते सूरज ऐन सिर के ऊपर चढ़ आया था और तरह-तरह की बेतुकी बातें करते हुए दोनों बेहद थक चुके थे, तभी बच्ची शिखा हकबकायी-सी भागती आयी और मुरारी बाबू से सट गयी. मिठाई का डिब्बा थामते हुए शिखा ने अंग्रेजी में आभार प्रकट कर कहा, "मुझे मिठाई अच्छी लगती है."

"तुम्हें अंग्रेजी में बात करना आ गया है, हिंदी में भी बोल लेती हो क्या?"

"थोरा-थोरा." शिखा कहकर मुस्करा दी. मुरारी बाबू ने अविनाश की तरफ देखा कि तुमने ठीक कहा था. उसकी पीठ थपथपाते हुए बच्ची से उन्होंने बाजार चलने का आग्रह किया, "तुम हमारे साथ चलो, हम तुम्हें बाजार घुमायेंगे, चीजें खिलायेंगे, दिलवायेंगे."

"अंकल, आज जूनियर क्लासों का फंक्शन है, आय वांट टु अटेंड दैट."

"ठीक है, तब कल सही. कल अपनी मिस से परमिशन ले लेना."

"अंकल, मैंने मसूरी देख ली है. अब नहीं देखूंगी." शिखा टूटी-फूटी हिंदी में बोली थी.

मुरारी बाबू हंसे, बोले, "तुम्हारा मन नहीं है तो ठीक है." बच्ची के सिर पर उन्होंने हाथ फेरा और फिर वे अपने साथियों के साथ मुड़ चले. अपने मिशन में असफल होने पर भी वे निराश नहीं थे.

"अब आपको विनय से मिलना है न ?" इतनी देर में अविनाश दूसरे बच्चे का नाम भी जान गया था.

"हां, वही तो करना है, अब स्कूल कितनी दूर है?"

"इस जगह से एकदम दूसरी दिशा में—तमाम कुलड़ी बाजार पार कर हम मालरोड पर पहुंचेंगे और फिर पूरी माल पर चलकर किताबघर आयेगा. वहां पहुंचकर मालूम करना होगा कि वह स्कूल कहां है."

"हुं." मुरारी बाबू छड़ी टेकते हुए बराबर मुस्तैदी से चलते जा रहे थे. लगता था, अब तक की यात्रा में वे कतई नहीं थके थे. कुलड़ी बाजार पार कर उन्हें एक शॉल की दूकान नजर आयी. वहां शो-केस में कुछ सुंदर शॉलों का प्रदर्शन किया गया था. मुरारी बाबू वहीं ठिठक गये, "आइए शॉल देखें." उन्होंने अविनाश को भी सम्मिलित किया.

"क्या देखेंगे यहां?" दूकान की सीढ़ियां चढ़ते हुए अविनाश ने आश्चर्य प्रगट किया.

"अजी साब, शॉल देखेंगे, कहा न." मुरारी बाबू ठठाकर हंसे थे. दूकानदार भी मुस्कराया. वह उन्हें सम्मान-पूर्वक दूकान में ले आया और तरह-तरह की डिजायन के बेशकीमती शॉल दिखाने लगा.

"कहिए कैसे हैं शॉल?" मुरारी बाबू ने शुरू किया.

"अच्छे ही दिख रहे हैं. अभी वाइफ दो-तीन शॉल लुधियाने से लायी थी. . ." अविनाश अटक गया.

"कैसे हैं वे शॉल?"

"मैंने अभी उन्हें ठीक तरह नहीं देखा है, अच्छे ही होंगे."

"कैसे शख्स हैं आप, वाइफ उतनी दूर से शॉल लायी हैं और आप हजरत देख तक नहीं रहे हैं."

"बात दरअसल यह थी. . ."

"चलिए बात कुछ नहीं थी, यह बताइए, यह शॉल कैसा लगा?" मुरारी बाबू ने अपने सामने फैलाये गये शॉल को संकेत करते हुए पूछा.

"साहब, यह शॉल आपने खूब पसंद किया है. यह रिवर्सिबल है, दोनों तरफ से ओढ़ा जा सकता है." जवाब शॉल वाले ने दिया, वह शॉल की खूबियां समझाने लगा था.

"देखिए, आप भी देखिए." अविनाश को फिर समेटा गया. मुरारी बाबू ने बड़ी रुचि से शॉल देखना आरंभ किया था, फिर वे उसकी कीमत पूछने लगे, थोड़ी देर कीमत पर बहस हुई और फिर मुरारी बाबू यह कहकर दूकान से निकल आये कि लौटने पर शॉल ले जायेंगे.

कुछ आगे चलकर मुरारी बाबू एक अखबार की दूकान में घुस गये. अविनाश बाहर लगी पत्रिकाओं को देखता रहा, एक पत्रिका खरीद भी ली. राघे रिक्शा खींचने वाले किसी पहाड़ी के पास बैठा बतियाता रहा. इस दूकान में मुरारी बाबू ने पच्चीस-तीस मिनट ही लगाये. पोस्ट ऑफिस के पास जो सड़क ऊपर की ओर जाती थी, उसी से गुजरते हुए तीनों मालरोड के बच्चा पार्क पर निकल आये थे. शरदोत्सव के उपलक्ष्य में यह स्थान खूब सजाया गया था. पहाड़ों तक पर चित्र रचना की गयी थी. तरह-तरह के फव्वारे, फूल, पहाड़ के ऊपर-नीचे ले जाने वाली ट्रॉली—कुल मिलाकर दृश्य मनोरंजक था. कुछ देर तीनों देखते रहे, फिर अविनाश ने याद दिलाया, "हम अपना खास मुद्दा (विनय से मिलने का) तो भूले ही जा रहे हैं. चलिए, पहले वह काम निबटा लिया जाये."

"तुम हमारी उम्र को देखकर सोच रहे होगे कि हम थक सकते हैं, पर आसानी से थकने वाले जीव हम नहीं हैं." मुरारी बाबू को अपना रोब गालिब करने का मौका मिल गया था. उन्होंने आगे जोड़ा, "अपनी जवानी में हम बैड टी की जगह अपने हलक में सवा सेर का लोटा भर दूध उंडेलते थे. नाश्ते में गुड़-चना या तीन-चार मोटी-मोटी रोटियां घी-शक्कर से खाते थे और दिन में पूरा खाना तो होता ही था. कभी कोई बीमारी या बदहजमी हमारे पास नहीं फटकी. आजकल के लोग क्या हैं; आधी रोटी ज्यादा खा ली तो टें बोल गये, हवा के एक-झोंके ने छुआ तो जुकाम हो गया, दो झोंके झेलने पड़ गये तो निमोनिया और उसके बाद तो. . ."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुरारी बाबू हो-हो करके हंस उठे थे.

अविनाश को मुरारी बाबू की टिप्पणी अच्छी लगी, वह भी हंसा. किसी तरह दोनों ने किताबघर के सिरे को पकड़ ही लिया. यहां पहुंचकर अविनाश ने किसी से स्कूल की बाबत पूछा तो पता चला, स्कूल करीब एक मील दूर और है.

"यहां से एक मील दूऽऽर! ! किधर से जाना होगा?" अविनाश ने फिर पूछा तो उसने जिस दिशा की ओर संकेत किया, उस दिशा की ओर खासी चढ़ाई दिख रही थी. "पहाड़ों पर यही दिक्कत है कि सवारी मुश्किल से मिलती है." अविनाश ने मुरारी बाबू से कहा तो वे तपाक से बोले, "अपने तो पैर सलामत चाहिए, फिर चाहे कैसी भी चढ़ाई हो, चढ़ ही जायेंगे. वैसे लगता है, अब ज्यादा दूर नहीं है." मुरारी बाबू चलते चले जा रहे थे. चढ़ाई धीरे-धीरे ऊंची होती चली जा रही थी, इसलिए बातों का सिलसिला एकाएकी टूट गया, सिर्फ चढ़ाई और चलाई शेष रह गयी. रास्ता वास्तव में सांस-उखाड़ू था, बीहड़ ऊंचा और ऊबड़-खाबड़. राधे के चेहरे पर भी थकान की पर्तें जमती चली जा रही थीं, हालांकि वह अभी जवान था.

तीनों चलते हुए महाराजा कपूरथला की कोठी के सामने पहुंच चुके थे, जिसकी लंबी-चौड़ी बारादरी में आठ-सात वर्दीधारी लोग बैठे चिलम-चाय पीते हुए गप्पें हांकने में तल्लीन थे.

"इन लोगों के भी खूब मजे हैं. राजा-महाराजा ये लंबी-चौड़ी कोठियां पहाड़ों पर बनवा-बनवाकर छोड़ गये हैं और उनकी संतति ने उसके रख-रखाव के लिए इनका इंतजाम कर दिया है.

"इसी कोठी में स्कूल हुआ होता तो हमें अपने को इतने ऊंचे न चढ़ाना पड़ता."

"पर ऊंचे और ऊंचे चढ़ते जाना ही तो जिंदगी का मकसद कहा गया है." मुरारी बाबू ने अविनाश को बहलाने का यत्न किया, पर अविनाश का मन किया, उनकी इस बात पर वह बेतरह गुर्रा उठे. मुरारी बाबू के बोलने का लहजा अब उसके भीतर एक प्रकार की खीझ उत्पन्न करता चला जा रहा था. उनकी अच्छी बातें भी उसे बुरी लगने लगी थीं. वे एक-एक शब्द पर जोर देते हुए रुक-रुककर बोलते थे, उनका स्वर काफी तीखा और लहजा काफी लंबा होता था. सुननेवाले को उनकी बात समाप्त होने का काफी देर तक इंतजार करते रहना पड़ता था, इसलिए सुननेवाले के मन में अनखनाहट भरती चलती थी, पर वे चाहते थे, कि सुननेवाला उनके प्रति पूर्ण सचेत रहे, जो कि स्वाभाविक था, किंतु मुरारी बाबू को सहन करना अविनाश के लिए इस समय मुश्किल पड़ रहा था.

"भाई, इधर कोई लड़कों का स्कूल है?" मुरारी बाबू किसी से पूछ रहे थे.

"जी हां है, करीब डेढ़ फर्लांग और होगा." वह आदमी बता रहा था.

"सिर्फ डेढ़ फर्लांग! !" लीजिए अविनाश बाबू, हम आ पहुंचे." मुरारी बाबू चहचहाये.

"अभी डेढ़ फर्लांग की दूरी और तय करनी है और आप समझ रहे हैं कि आप आ पहुंचे. आपके उत्साह और आशावादिता की दाद देनी चाहिए बाबूजी!" अविनाश को मन मारकर उल्लसित होना पड़ा.

महाराजा कपूरथला की कोठी के बाद दो-तीन मोड़ चढ़ाई और थी, जिसे चढ़कर वे सब स्कूल की बिल्डिंग में आ पहुंचे. विनय भी मिल गया और उससे मिलकर यह भी तय हो गया कि चूंकि विनय के इम्तहान एक-दो दिन में ही होने वाले हैं, इसलिए वह बाजार घूमने नहीं चलेगा. मुरारी बाबू के आदेश से साथ लाये मिठाई के डिब्बे को राधे ने यहां भी विनय को पकड़ा दिया और काफिला फिर लौट चला.

मुरारी बाबू अब चाय पीने के लिए छटपटाने लगे थे; "नीचे मेन बाजार में पहुंचकर कहीं बढ़िया चाय पी जाये." उन्होंने प्रस्तावित किया तो अविनाश ने राहत की सांस ली. थोड़ी देर खाते-पीते आराम से बैठेंगे तो कुछ ढंग की बात हो सकेगी, अब तक जो बातें होती रही थीं, वे मनोरंजक और सार्थक कम, उबाऊ अधिक थीं. मेन बाजार में पहुंचकर नाश्ते के लिए राधे को अलग से पैसे थमाकर अविनाश ने एक अच्छे रेस्तरां की तलाश की. मनचाहा रेस्तरां पास ही मिल भी गया.

दोसा और चाय का नाश्ता करके बाहर आये तो दिन के चार बज रहे थे और सूरज पहाड़ की चोटी से कलाबाजियां खाता, गिरता चला जा रहा था. अविनाश का मन था कि अब जल्दी-जल्दी चलकर घर पहुंचा जाये और आराम किया जाये, सुबह पौने दस से वे बराबर चल रहे थे, एक पल के लिए भी आराम नसीब नहीं हुआ था. तभी मुरारी बाबू ने अपनी छड़ी पर दोनों हाथों का भार डालते हुए बड़े गंभीर स्वर में प्रस्तुत किया, "सुनिए अविनाश बाबू, अब आपने बढ़िया चाय पी ली ही है, अच्छा नाश्ता भी कर लिया है, अब हम लोग आराम से चलेंगे, कोई हड़बड़ी नहीं होनी चाहिए. आखिर हम मसूरी देखने आये हैं, बच्चों का काम तो निबट ही चुका है और हमारे किसी वैद्य-हकीम ने नहीं बताया है कि हम दौड़ते ही चले जायें." और अविनाश के प्रत्युत्तर का इंतजार किये बिना ही वे सामनेवाली दूकान में प्रविष्ट हो गये. भीतर से ही उन्होंने अविनाश को भी आमंत्रित किया, "भीतर चले आओ भई, इनके यहां बड़ी-बड़ी नायाब चीजें हैं."

अविनाश ने दूकान में घुसते हुए सुना, वे दूकानदार से समझौता कर रहे थे, "अगर हम आपसे कोई चीज न खरीद सकें तो भी आप नाराज नहीं होंगे." दूकानदार ने हाथ जोड़े, "हम तो आपके बच्चे हैं हुजूर!" मुरारी बाबू अविनाश की तरफ देखकर मुस्कराये, देखा कैसा दबदबा है हमारा, हमारी शख्सियत का. आपकी तरह पिद्दी-सी शख्सियत होती तो हो सकता था कभी यह? यह कहते हुए मुरारी बाबू की छह फुट ऊंची कद्दावर देहवाले चेहरे की आंखें मुस्करा रही थीं.

अब वे दूकान में लगी एक-एक चीज को बड़े गौर और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारीकी से देखने-परखने लगे थे. दूकान में कांच, तांबे, पीतल, कांसे की पुराने समय की ढेर चीजें थीं, वे हर चीज को देखते और उसकी कीमत पूछते जा रहे थे, अचानक वे एक घड़ी के पास जाकर ठिठक गये. ब्रास के दो छोटेनक्काशीदार खंभों के बीच टंगी यह घड़ी बहुत पुरानी नजर आ रही थी. कुछ देर देखते रहे, फिर पूछा, "इसमें चाबी भरने की जरूरत पड़ती है?"

"जी नहीं, यह ऑटोमेटिक है."

"कब से चल रही है यह?"

"जब से यह बनी है साब, तभी से."

"इतने अर्से से बराबर चल रही है, अजूबा ही कहना चाहिए इसे." अविनाश और राघे दोनों ने भी आश्चर्य प्रकट किया. मुरारी बाबू इसी बीच दूसरी चीजें देखने लगे और फिर बराबरवाली कपड़ों की दूकान में घुस गये. वे वहां टंगे शॉल, मैक्सियां, कोट और बच्चों के गर्म कपड़ों के बारे में जितनी देर पूछताछ करते रहे, उतनी देर अविनाश और राघे दूकान से बाहर ऊबे से खड़े रहे. मुरारी बाबू के

■ व्यंग्यचित्र : बदर

हाव-भाव, मुद्राओं से लग रहा था, वे एक-एक चीज का नाप-जोख, मोल-भाव कर रहे हैं.

अविनाश ने सोचा, अगर हर दूकान की पड़ताल इसी तरह होती रही तो उस दिन की तारीख में तो वे लोग घर पहुंचने से रहे. अविनाश को घर पर पड़े अपने मित्र दुर्गानाथ की याद आयी. अगर वह साथ हुआ होता तो न रास्ता इतना बोझिल हुआ होता और वह शख्स बाबूजी को भी रास्ते पर ले आया होता. पर मुरारी बाबू को रास्ते पर लाना शायद किसी के भी बस का नहीं था. वे उस दूकान से निकलकर पहाड़ के साथ-साथ लगी तिब्बतयों की फुटपाथी दूकानों पर बिछी चीजों को बड़ी बारीकी और उल्लास से उलटने-पलटने लगे.

तभी उन्हें एक तिब्बती महिला की चारपाई पर सजी उसकी दूकान नजर आ गयी. उस दूकान में रखा था, एक जलप्रूफ और कई खानों और जिपों वाला बेहद साफ-सुथरा नया निकोर एक बैग, जिसे वे हर कीमत पर नहीं, हर हालत में लेने के लिए आमादा हो उठे थे. दाम पूछे, एक सौ पच्चीस. पहले वे चौकन्ने हुए, फिर बैग को उलटा-पलटा, उसका मूल्य आंका, फिर बोले, "सौ रुपये का एक बंधा नोट लो और बैग को हमारे हवाले करो." मुरारी बाबू की बात सुनते ही महिला ने बैग उनके हाथ से छीन लिया कहा, "बाबा, हमें माफी दो."

मुरारी बाबू क्षणांश को हतप्रभ हुए पर हारे नहीं, स्वर में मुलामियत भरते हुए बोले, "अच्छा, तुम अपना नाम बताओ, तुम्हारा नाम क्या है?" बैग छिन जाने की जिल्लत को उन्होंने प्रगट नहीं होने दिया.

"नाम से क्या लेना-देना है बाबू." महिला जवान थी और कुछ तेज-तर्रार भी. अपने सिर पर बंधे ऊनी मफलर को उसने ठीक किया, काले लहंगेनुमा मैक्सी को संभाला और ठसके से चीजों को व्यवस्थित करने लगी. मुरारी बाबू ने पासा फेंका, "तुम चाहो तो हमारा नाम पूछ लो, इसमें क्या है."

"हमें आपका नाम भी नहीं जानना." महिला गले में पड़ी मोटे हरे-काले मनकों की माला को सुघारते हुए हंसी, "नाम पूछकर क्या होने का बाबा. अच्छा चलो. हमने बताया हमारा नाम शेलम है बस्स, पैसा देना हो तो चीज उठाओ, नहीं तो छुट्टी करो."

शेलम नाम कुछ समझ में नहीं आया, नाम से सचमुच मुरारी बाबू को भी कुछ लेना नहीं था, सौ रुपये का सालिम नया नोट उन्होंने चरपराई पर रखे उसे बैग के पास छोड़ दिया. बोले "तुम यह नोट भी लो और बैग भी रखो, हम चलते हैं."

मुरारी बाबू को निस्संग भाव से पैर बढ़ाते देख महिला चीखी, "सुनो बाबू सुनो, ऐसा कैसे होने का होता!"

"शेलम, तुम हमें फालतू में क्यों रोकती हो? अगर तुम्हें सौ रुपये और हमारी ढेर सारी दुआएं मंजूर नहीं हैं तो हम चले. यह नोट रख लो, एक बाप अपनी बेटी को इतना तो दे ही सकता है."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुरारी बाबू की इस बार की गोट काम कर गयी. लचकदार स्वर में शेलम ने पूछा, "बाबू, क्या सच में तुम्हारी दुआओं में इतनी ताकत है?"

"इतनी क्या, इससे भी ज्यादा है; दुआओं का असर तुम देखना कहां चाहती हो!"

"देखेंगे, हम जरूर देखेंगे." महिला ने हाथ जोड़े और बैग मुरारी बाबू को थमा दिया, "लो पकड़ो बाबू."

मुरारी बाबू ने बैग राधे को थमा दिया, शेलम से कहा, "अब देखना, तुम्हारी चीजें कितनी जल्दी बिक जाती हैं." शेलम को प्रसन्न मुद्राओं में छोड़ वे आगे बढ़ गये.

आगे चलकर मुरारी बाबू ने बैग खोलकर दिखाया, "यह बैग चीन में बना है, इन जिपों पर देखो कैसी लिपि है. ये जिपें भी कम-से-कम सत्तर अस्सी रुपयों की होंगी. कपड़ा अलग है, जो न पानी में खराब हो, न धूप में." मुरारी बाबू बैग की खूबियां बताने लगे थे.

अविनाश मुरारी बाबू के इन सौदों से ही श्लथ हो उठा था. किसी भी चीज को इस तरह के दांव-पेंच से छीना-झपटी करके खरीदने की कला में न वह निपुण था, न उसे इसका अफसोस था. अपनी खरीदारी में वह कई बार ठगा गया था, पर उसे इसका दुःख नहीं हुआ था. उसकी दृष्टि में दुःख मनाने के लिए देश में इससे बड़ी स्थितियां मौजूद थीं.

चीजों और प्रायः अपने व्यक्तित्व और वेशभूषा के प्रति भी वह दिन पर दिन निस्संग होता चला जा रहा था. पत्नी कभी-कभी उसकी इस आदत पर खीझती थी. थकटूटकर वह इस समय मालरोड के किनारे बनी एक बेंच पर बैठ गया और नीचे की ओर जाती मुड़ी-तुड़ी लंबी सर्पीली सड़क को देखने लगा, जिस पर से बस के जरिये खिंचकर वह इधर इस जंजाल में फंसने के लिए आ पहुंचा था. विदेशी स्मगल्ड चीजों के प्रति पुरानी पीढ़ी के सम्मोहन के बारे में वह सोच रहा था.

मुरारी बाबू इस बीच किसी दूसरी दूकान की पड़ताल करने पहुंच गये थे. उसने राधे से कहा, "हम यहां बैठे हैं, बाबू दूकान से निकलें तो हमें बुला लेना. पूछें तो कह देना, हम थक गये हैं." अपने लिए मुरारी बाबू की दी गयी बूढ़े की उपाधि को ओढ़ लेने में उसे इस समय कोई ऐतराज नहीं था.

वह क्या सचमुच हार गया है? बकौल मुरारी बाबू, बूढ़ा हो गया है? मालरोड के किनारे की बेंच पर गिरा-सा होकर अविनाश खुद को विश्लेषित करने लगा : नहीं नहीं, वह थका नहीं है. इस समूची मालरोड को तेज-तेज कदमों से पार कर वह अभी आध घंटे में ही लंढोर क्या, लाल टिब्बे तक पर पहुंचने की सामर्थ्य रखता है. पर वह इस समय बुझ चुका है, श्लथ हुआ पड़ा है—एक-एक दूकान में एक-एक घंटे तक खड़े या बैठे रहकर चीजों का मोल-भाव करते रहने और रिंगते चलते रहने का माद्दा उसमें बिल्कुल नहीं है. अपनी रुचि के अनुसार बात न कर सक पाने वाले व्यक्ति के साथ घिसटना उसमें कोफ्त भरता चला जा रहा है—यह जबरन… गयी मजबूरी और मुंह खोलकर कुछ न कह पाने… विवशता ने उसे अधमरा बूढ़ा बना डाला है.

"उठो बाबू!" राधे कह रहा था. अविनाश ने देखा मुरारी बाबू पास खड़े थे और बहुत खुश थे.

"कुछ और खरीदा क्या?" अविनाश ने हड़बड़ाकर पूछा.

"अजी, हर दूकान में हम देखते जरूर हैं, पर हर दूकान से खरीदारी करने की हिम्मत हम नहीं करते. यह तो अपना होलिडे मूड है तो खरामा-खरामा देखते चल रहे हैं."

'पर किस कीमत पर? कुछ जान रहे हैं आप?' अविनाश कहना चाहता था, पर मुरारी बाबू की बात अभी खत्म नहीं हुई थी. वे कह रहे थे, "मालरोड खत्म होने के बाद कुलड़ी में तो एक-से-एक आला दूकान मिलेगी. आते हुए हम जल्दी में थे. . ."

'ठीक है, तो मैं चलता हूं, आप देखते रहिये.' कहने की धृष्टता अविनाश फिर नहीं कर पाया. मालरोड खत्म होते ही एक दूकान से उसने बिना किसी मोल-भाव के जेब को एकदम खलास करके एक ट्रांजिस्टर खरीद डाला. दूकानदार से कहा, "जरा इस पर गाने लगा दीजिये." दूकानदार ने बड़े अदब से ट्रांजिस्टर की सुई की नोक को ऑल इंडिया रेडियो के बिंदू पर खड़ा कर दिया—संगीत की सुकोमल दर्दीली स्वर-लहरियां फिजां में गूंजने लगीं. अविनाश ने स्वर को थोड़ा-सा धीमा किया, अपने सुन सकने लायक और फिर ट्रांजिस्टर को कंधे पर लटका लिया.

एक के बाद एक नगमे अब उगते चले जा रहे थे और मुरारी बाबू के साथ घिसटने के लिए अब वह बखूबी तैयार था, कितनी ही दूर, निरंतर, बिना थके, बिना रुके—लगा, अकस्मात वह फिर से जवान हो उठा है. □

● 3/6 भगवान नगर, देहरादून-248001

चलते-चलते

एक मुसहर अपनी पत्नी के साथ शाम के वक्त अपनी झोंपड़ी में बैठा था. सामने से एक बड़ी बारात गुजरी.

मुसहिर की पत्नी ने बड़े भोलेपन से पूछा, "ऐजी, ये इतने लोग कहां जा रहे हैं?"

"राजा के यहां."मुसहर ने कहा.

"हाय-हाय, इतने लोग इत्ती बड़ी रात को राजा के यहां जा रहे हैं? रानी बेचारी इन्हें क्या खिलायेंगी? इत्ती रात को क्या पकायेंगी?" मुसहर की पत्नी सचमुच चिंतित थी.

"अरे राजा की बात है, कमी क्या है, न होगा तो गुड़-चाउर ही खिला देंगे." मुसहर ने कहा. □

"हूं." मुसहर की पत्नी आश्वस्त हो गयी.

● प्रस्तुति : उषाकिरण खान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी हैड अ लिटिल लैंब

निर्मला देशपांडे

कोर्ट जाते समय पिताजी को चाय जरूरी लगती थी. पिछले डेढ़-दो साल से यह काम शोभना को जान-बूझकर सौंपा गया था. शुरू-शुरू में उसे बुरा लगा होगा, वह मायूस भी हो गयी होगी, उसने आंसू भी बहाये होंगे. मुझे पढ़ाई के लिए समय नहीं मिलेगा . . . मेरे हाथ से एकाध कप-प्लेट भी टूट जाये तो कयामत. . . . . संडासी से बर्तन भी पकड़ना नहीं आता मुझे . . . खौलता पानी किसी के बदन पर गिर जाए तो?

ये और ऐसे बहाने काम से बचने के आजमाइशी नुस्खे. वैसे तो पिताजी के कोर्ट में जाने के लिए चल देते ही स्कूल का समय हो जाने तक मटरगश्ती और उछल-कूद में शोभना मस्त रहती. यौवन की देहलीज पर कदम रखने के बावजूद!

"बाहर दो कप चाय भेज दो." सवेरे की डाक देखते हुए सामने के बरामदे से होकर पूजाघर की देहलीज लांघकर पिताजी की धारदार आवाज चौके में पहुंच जाए तो समझ लेना चाहिए कि मेम साहब पधार रही हैं!

मेम साहब इसी समय पधारती हैं. हर दो दिन बाद.

रियासत की राजकन्या बाईजू-राजा को अंग्रेजी भाषा और पश्चिमी रीति-रिवाज आदि से परिचित कराने के लिए मेम साहब की नियुक्ति की गयी थी. यही, कोई दो-ढाई साल पहले. प्रातः साढ़े नौ से बारह बजे तक ट्यूशन और दोपहर साढ़े तीन से छः बजे तक गांव के प्रसूतिगृह में प्रसूता माताओं की देखभाल करना, साफ-सफाई का महत्व उनके गले से नीचे उतारना, हिसाब-किताब आदि की शिक्षा देना. उसके बाद घर में आराम करना. लेकिन हर शनिवार, रविवार को ब्रिज खेलने के लिए अनिवार्यतया क्लब में जाना.

मिल्ट्री अस्पताल, महू में मेट्रन के रूप में काम करने के पूर्वानुभव के कारण ही उन्हें यहां भी वैसी ही नौकरी मिल गयी थी शायद.

किशोरवय में लड़की ने कदम रखा नहीं कि मां-बांप ने तरह-तरह की पाबंदियां लगाई नहीं · · · फलां से मत मिलो, फलां को मत देखो, अब मत हंसो. . . मगर क्या इनके परिणाम सुखद ही होते हैं. . .? प्रस्तुत है राज-परिवार से जुड़ी एक ऐसी किशोरी की कथा जो अनजाने ही अपनी सम-वयस्क किशोरी में एक पुरुष की तलाश करने लगती है और तब . . .?

उससे पहले मेम साहब के मियांजी कर्नल विन्सेंट महू छावनी में थे. एक बार मंच पर खड़े होकर भाषण कर रहे थे कि सीने में हूक उठी और वहीं ढेर हो गये. उसके बाद मेम साहब की नियुक्ति ललितपुर रियासत में हुई.

मेम साहब की एक ही लड़की थी. ढलती उम्र की सौगात. इस समय देहरादून में रहती है. कैथलिक कॉलेज के होस्टल में रोज मेरी दूसरे वर्ष की पढ़ाई पूर्ण कर रही है.

दो घोड़ों की बग्घी में खुली छत के नीचे सरकारी बंगले में ट्यूशन पढ़ाने जाते समय हर दो-तीन दिन के अंतर से मेम साहब वकील साहब के बंगले में जरूर हो आतीं.

वैसे तो बीच-बीच में मेम साहब का कुछ-न-कुछ काम

▣ मराठी कहानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता ही है वकील साहब के पास. कर्नल विन्सेंट द्वारा खरीदी गयी जमीन-जायदाद, उनके द्वारा किराये पर चढ़ाये गये बंगले के कागजात वकील साहब को दिखाने जो होते हैं. सलाह लेनी पड़ती है.

प्रति दिन इस वक्त तक रोजमेरी घुड़दौड़ पूरी कर लौटा करती है. उसके पीछे, दूसरे घोड़े पर उसका प्रशिक्षक बांके बिहारी होता है. सुनहरे-रेशमी बालों से पसीने की बूंदें झरने लगती हैं. अक्सर किसी वृक्ष की आड़ में खड़ी होकर फूलों के पौधों की सिंचाई करवाती या फिर फूल तोड़ते वक्त रोजमेरी को देखने का अवसर शोमना को प्राप्त होता है. बल्कि शोमना रोजमेरी के घोड़े की आहट पाने की प्रतीक्षा ही कर रही होती है! शायद शोमना रोजमेरी को दिखाई नहीं पड़ती थी. फिर भी अपने बंगले से पचास कदम की दूरी पर समवयस्क या दो-चार साल छोटी भारतीय लड़की रहती है, उस परिवार को मां अच्छी तरह से जानती है, कई तरह की खाने की चीजें वहां से आती हैं. . . अतएव वहां घोड़े को रोककर उन लोगों से परिचित हुआ जाए. . . यह बात शायद रोजमेरी के ध्यान में अभी नहीं आयी थी जबकि उसे वहां आये आठ-दस दिन हो गये थे.

यदा-कदा रोजमेरी का प्रातःकालीन घुड़दौड़ का दौर साढ़े नौ बजे ही समाप्त हो जाता. यानी उसके बाद जब वह लौट रही होती तो शोमना नहा रही होती है. लेकिन घोड़े की आहट पाकर वह गुसलखाने में ही नहाने के पत्थर पर खड़ी होकर झरोखे से बाहर झांकती है. किसी पराक्रमी योद्धा की अदा में घोड़े पर सवार रोजमेरी और उसके पीछे-पीछे दूसरे घोड़े पर मरियल-सी सवारी करता दुबला-पतला कुबड़ा बांके बिहारी!

रोजमेरी की सूरत शोमना की नस-नस में जैसे समायी हुई है. . . इसी से उसका मन बेचैन हो जाता है. . . घोड़े पर सवार रोजमेरी पेड़ों के झुरमुट में अदृश्य होने को है. . . तो इधर शोमना के दिल की बेचैनी भी चरम सीमा पर पहुंच जाती है. गले से लिपटा फंदा जैसे कस रहा होता है. . . खून खौलने लगता है. . . तीन-चार साल पहले पहली बार रजस्वला क्या हुई, अदृश्य सीखचों की कैद मयस्सर हुई. . . और उससे पहले माली के लौंडों के साथ हुड़दंग और हो-हल्ला, बिना किसी रोक-टोक के!

लेकिन अब सिर से नहाने के बाद बाल खुले छोड़कर बाग में मत जाओ. शीशे के सामने घंटों मत रहा करो.

ये मत करो, वो मत करो!

फलां की ओर देख के क्यों हंसते रहे और फलां की ओर देखकर रूठने की वजह क्या थी. और ढेरों सवाल!

पिछले वर्ष गर्मी की छुट्टियों में केवल आठ-दस दिनों के लिए ही रोजमेरी यहां आयी थी. होस्टल की लड़कियों की ट्रिप-विप गयी थी! उससे पहले यानी जिन दिनों मेम साहब यहां आयी थीं, उसी मौसम में बगल वाले बंगले में मरम्मत का काम और रंगाई-पुताई का दौर चला था. उनके रहने की व्यवस्था जच्चा खाने में की गयी थी. रोजमेरी यहां की गर्मियों से सहमकर इनमें ही रही थी. अब की बार पूरा दिसंबर महीना और जनवरी की बीस तारीख तक वह यहीं रहेगी. यहां आये उसे हफ्ता भर हो गया है लेकिन रोजमेरी और शोमना एक दूसरे को नहीं जानतीं! सौभाग्य से ऐसा मौका आ जाता है!

लड़कों के हाईस्कूल के हेडमास्टरजी की बहू सात माह की गर्भवती है. यानी प्रसूति के लिए मायके जाने में अभी आठ-दस दिन बाकी हैं. इस बीच वकील साहब के घर पर दोहद भोज का आयोजन तो होना ही है. झूले पर दोहद भोज होना है तो झूले को सजाने के लिए ढेर सारे फूलों की आवश्यकता तो पड़ेगी ही. शोमना अपनी छोटी बहन शामल के साथ मेम साहब के आदेश पर उनके बाग में फूल तोड़ने गयी है. और इधर घुड़दौड़ के अभ्यास से लौटकर घोड़े की पीठ से फुदककर उतरते ही रोजमेरी बंगले की सीढ़ियों से भीतर चली गयी.

पुलिस की वर्दी नुमा कमीज, उसी रंग के बीच, चमड़े की बेल्ट, मर्दाना जूते आदि मर्दाना तरीके से सजे, किंतु अपने नाम को ही यथार्थ करने वाले गुलाब की-सी सदाबहार आकर्षक खूबसूरती!

रोजमेरी को इतने करीब से देखकर शोमा की आंखें चुंधिया जाती हैं. फूल तो है पौधे पर लेकिन उसे तोड़ने के लिए ऊपर उठा हाथ टहनी पर ही ठिठका हुआ है अधर में!

लल्लू छाप शामल बंगले की सीढ़ी पर बैठी है और आंखों पर आयी जुल्फों को संवारकर एक-एक फूल गिन कर फूलदान में छोड़ रही है. पूरी तन्मयता से! बाईजू राजा का दिल आज पढ़ाई में नहीं लग रहा है. इसलिए, मेम साहब भी सरकारवाड़े से लौट आयी हैं. इन दोनों बहनों को बड़े ही प्यार से भीतर बुलाकर रोजमेरी से उनका परिचय उन्होंने करवाया.

मन में उठ रहे तूफान को दबाकर बंगले की सीढ़ियों से भीतर जाते हुए शोमना ने बड़े ही उत्साह के साथ कहा, "मां, आज रोजमेरी से मेरा परिचय हुआ."

"अच्छा हुआ. शाम को दोहद भोज में उसे भी बुलाओ."

"वह तो हंसने लगेगी हमारे रीति-रिवाज को देखकर. कितने बड़े कॉलेज में पढ़ती है वह! वे दोहद भोज, नामकरण आदि गंवारू समारोह नहीं मनाते."

"न सही."

उस दिन से शोमना को जैसे एक नयी दुनिया प्राप्त हुई. रोजमेरी से तो उसका परिचय हो ही गया है. अब उस परिचय को घनिष्ठता में परिवर्तित करना है. रोजमेरी की नीली-नीली आंखों की गहराइयों में शोमना अपने खोये हुए व्यक्तित्व की आहट पाना चाहती है. . . नये-आधुनिक विचारों से वाकिफ होना चाहती है. रोजमेरी की बोल-चाल में पाये जाने वाले आत्मविश्वास को शोमना ग्रहण करना चाहती है.

आजाद खयाली वृत्ति, निश्चितता. . . अपनी बिलबिलाती,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▣ व्यंग्यचित्र : बदर

कुनमुनाती आत्मा को रोजमेरी के सहवास में वह राहत की सांस दिलाना चाहती है. . . रोजमेरी के देहरादून लौटने के बाद शोमना उसे अंग्रेजी में पत्र लिखेगी और उसके जवाब में प्राप्त अंग्रेजी पत्र बड़ी ही शान से अपनी भोली-भाली सहेलियों को दिखाएगी.

इस प्रकार औपचारिकता का दौर खत्म हुआ. रोजमेरी ने शोमना को भोजन पर अपने घर आमंत्रित नहीं किया है. रात्रि-भोज के बाद अपने घर लौटते हुए 'सी यू' कहकर वह सीढ़ियां उतरने लगी तो शोमना लगभग रुआंसी हो गयी!

लेकिन उसकी यह मायूसी अस्थायी थी.

घुड़सवारी के दौरान यदा-कदा पेड़ की आड़ में खड़ी शोमना को देखकर रोजमेरी हाथ हिलाती है. . . कभी-कभार मुस्कराती भी है. . . और आगे निकल जाती है.

घोड़े से उतरकर रोजमेरी करीब आयेगी, बाग में कुछ बतियाएगी, हंसी-मजाक का दौर चलेगा आदि जो उम्मीदें शोमना ने संजोयी थीं उन पर पानी फिरता नजर आने लगा.

छुट्टी का महीना खत्म होते ही रोजमेरी तो देहरादून चली जायेगी. फिर इतने कम समय में रोजमेरी से दोस्ती हो तो कैसे और वह दोस्ती घनिष्ठता में कैसे बदल सकती है?

लेकिन इसके दो दिन बाद ही नव-वर्ष के उपलक्ष्य में आयोजित एक महिला पार्टी में मेमसाहब की ओर से शोमना और उसकी मां को भी आमंत्रित किया गया तो शोमना फूली नहीं समायी. कड़ी सर्दी की वजह से मां का जोड़ों का दर्द फिर शुरू हुआ. अतएव पार्टी में मां तो जा नहीं पाएगी. लेकिन अपनी अनुपस्थिति में बेटी को भी उसमें शामिल न होने देने के, मां के तर्क से पिताजी सहमत नहीं थे. शायद वे सोचते हों कि रोजमेरी की बदौलत हो या मेमसाहब की बदौलत, अपनी चतुर और विवाह योग्य बिटिया अंग्रेजी बोलने की अभ्यसत हो जाएगी. वैसे भी स्कूल की पढ़ाई खत्म होते ही रोजमेरी से कोई किताब लाने के बहाने उससे मित्रता बढ़ाने के लिए वकील साहब अपनी बेटी को अक्सर उकसाते हैं!

सफेद लेस वाली मिनी फ्रॉक और गले में मोतियों की माला. . . मिनी फ्रॉक से झांकती उसकी गोरी-गोरी टांगें और नाभि दर्श पेट.

शोमना बरामदे की सीढ़ियां चढ़ ही रही थी कि रोजमेरी लपककर आयी और उसने उसे भींच लिया.

शोमना भौंचक्की-सी असमंजस में पड़ गयी है. . .

रोजमेरी की भींच से अलग होने पर उसे सुकून मिला. . .

इतनी सारी महिलाओं के होते हुए रोजमेरी के आलिंगन से वह अभिभूत हो उठी.

भीतर ही भीतर सकुचाने के बावजूद रोजमेरी के साथ मित्रता बढ़ाने के प्रथम चरण के सूत्रपात से वह सिहर उठी है. उसे गर्व भी महसूस हुआ.

खान-पान की चीजों से भरी प्लेटें अभ्यागतों को देते हुए, मेमसाहब उन दोनों की ओर भी इत्मीनान से देखती रहीं. मानों वे नयी कोंपलें हों.

खाना-पीना, गाना-बजाना, परिचय, गप-शप आदि का दौर खत्म हुआ. उसके बाद फिर से मिलने का वादा कर रोजमेरी से शोमना ने विदा ली.

अगले वर्ष मैट्रिक के बाद की पढ़ाई के लिए मामा के पास बंबई जाने का आग्रह शोमना ने पिताजी से किया. जाहिर है कि मां के आंचल की ओट से उसने यह इच्छा व्यक्त की. फिर भी पिताजी इसके लिए राजी नहीं हो रहे हैं. वयस्क लड़की को दूर शहर में, वह भी बंबई जैसे शहर में रखना उसके पिताजी को रास नहीं आता. और फिर मना करने के लिए मां के जोड़ों के दर्द का बहाना तो था ही. इसके अलावा जल्दी ही लड़की के हाथ पीले करने की फिराक में भी वे हैं.

यानी उच्च शिक्षा लगभग खटाई में पड़ गयी है.

लड़कों के कॉलेज में लड़की को प्रवेश दिलाने का तो सवाल ही नहीं उठता. रोजमेरी को अब देहरादून की बजाय नाना के पास इंग्लैंड भेजना मेम साहब ने तय किया है.

रोज न इंग्लैंड जाने के लिए राजी है, न देहरादून के लिए! वह यहीं रहना चाहती है. . . इतनी पढ़ाकू लड़की को अब पढ़ाई से जैसे विरक्ति हो गयी है. . . यहां गरीबों की सेवा करने की इच्छा उसके मन में है. . . रेडक्रॉस जैसी किसी संस्था की स्थापना करने का इरादा है!

साम-दाम-दंड-भेद हर तरह से उसे समझा-बुझाने के मेमसाहब के प्रयास विफल हो गये और अब यदा-कदा रोजमेरी के बारे में शिकायतें ही आने लगीं.

हर दो-एक दिन बाद मेमसाहब वकील परिवार में आ कर यही रोना रोने लगतीं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बीच रोजमेरी और शोभना की मित्रता दृढ़तर होती गयी.

अब स्कूल से साढ़े चार बजे लौटते हुए शोभना रास्ते से हटकर हठात् मेमसाहब के बंगले के पास ठिठक ही जाती है. बल्कि भीतर भी चली जाती है. रसोइया अपने कमरे में खर्राटे भर रहा होता है, माली बगीचे में अपने काम में व्यस्त रहता है और गुलबत्ती आउट-हाउस के दरवाजे के पास अपने मुन्ने को दूध पिला रही होती है. हाल में केवल रोजमेरी कुर्सी में बैठी किताब पढ़ रही होती है या फिर कुछ लिखने में व्यस्त रहती है!

मेमसाहब दवाखाने में रहती हैं.

घर लौटने में विलंब होने की वजह पूछने पर टीचर ने 'एक्स्ट्रा क्लास ली' यह बहाना तो शोभना के पास है ही. यदा-कदा 'रोज के घर किताब लाने गयी थी' बहाना भी चल जाता है... मां के गुस्से की पर्वाह किये बिना! मुलाकात होते ही दोनों सहेलियां एक-दूसरे का हाथ थामकर बगीचे का एक चक्कर लगा आती हैं... दोनों मिलकर हिंडोले पर झूलती हैं... छीना-पानी भी खेलती हैं. ऐसे समय रोजमेरी केवल मेरी रह जाती है और शोभना शोना! रसोइया डाइनिंग टेबल पर चाय की प्यालियां सजाता है. चाय की चुस्कियों के साथ रोजमेरी ने कहा, "पिछले जनम में हम दोनों के बीच में जरूर कोई रिश्ता रहा होगा. इसीलिए तो इस जनम में हम सहेलियां हैं, समझी!"

यदा-कदा बड़े ही लाड़-प्यार से शोभना कहा करती, "तुम्हारे घोड़े के दौड़ने की आवाज सुनकर मेरा कलेजा धक् से रह जाता... ऐसी रौबदार लड़की से मित्रता करने को जी ललचाता मेरा... मैं लगभग हर रोज तुम्हें देखती... गुसलखाने की खिड़की से, पेड़ों की आड़ से लेकिन तुम्हारा ध्यान ही कहां रहता था!"

"गलत, बिल्कुल गलत! मैं भी तुम्हें देखती थी. लेकिन फिर भी अनदेखी किया करती थी... अंग्रेजी में एक कहावत है... किस अ गर्ल एंड शी विल किक यू— किक अ गर्ल एंड शी विल किस यू— ठीक उसी तरह से!"

"मतलब मैं समझी नहीं?"

"ओऽऽ माई डियर किड्-रादर-लैंब..."

"न किड् समझ में आया, न लैंब! मजाक बस करो!"

"किड् थोड़ा-सा चालाक होता है... जबकि लैंब तो लैंब ही होता है! यू आर माई लैंब! ऐनी वे. मैं आज तक कई खूबसूरत लड़कियां देख चुकी हूं लेकिन तुम उन सबसे अलग हो..." शोभना को भींचते हुए रोजमेरी ने कहा.

रोज के बदन से मर्दाना सेंट की सुगंध आ रही है. उसी सुगंधित विचारों के झोंकों पर सवार होकर शोभना वहां से चल दी.

रोजमेरी से बातों ही बातों में एक रोज शोभना को पता लगा कि यहां उसकी एक सहेली और भी है.

शोभना सोचने में खो गयी—यानी कि वह खुद हवा में ही तैरती रही अब तक! बांहों में बाहें डालकर बगीचे में घूमना-फिरना, एक-दूसरी की जूठी चीजें खाना, जूठा पानी पीना, एक ही बिछौने में लेटे रहना... ताजिंदगी मित्रता के कस्में-वादे...

यहां रोजमेरी की अंतरंग सहेली केवल वही है, इसी भ्रम में थी शोभना अब तक लेकिन अब असलियत का पता चलते ही जैसे वह आसमान से धरती पर आ गिरी.

आंखों की नमी को छुपाते हुए, कुछ भर्राये स्वर में उसने पूछा... "दून में तो तुम्हारी सहेलियां हो सकती हैं. लेकिन यहां?"

"कह तो दिया? है यानी थी. पिछली बार क्रिसमस पार्टी में हम आखिरी बार मिले थे. उसके बाद उसके घर जाने का समय ही नहीं मिला. जाने को जी नहीं करता. तुम्हारे इंतजार में ही दिन ढलता है!"

"क्या नाम है तुम्हारी सहेली का?"

"उस अमराई के पार अंधा तालाब है न, उसके पास रहनेवाली चमेली ही मेरी सहेली थी. मैं उसे हेयर पिन, रिबन, कांटे आदि दे दिया करती थी. उसी में वह बाग-बाग हो जाती. इंग्लैंड या दून जाने की बात को लेकर मुझ में और मम्मी में कहा-सुनी होते ही मैं सीधे अंधे तालाब की ही राह पकड़ती. चमेली मुझे शांत करती. मम्मी हाल में ही गुमसुम-सी बैठी रहती. आंसू बहाती हुई! मुझे गले से लगाकर कहती, 'रोज डार्लिंग, इंग्लैंड चली जाओ. नाना जी वहां तुम्हारे इंतजार में हैं. वहां तुम्हारे लिये कई रिश्ते हैं. डेटिंग करो. और अपनी पसंद के किसी लड़के से शादी कर लो.' मां को नाराज तो करना नहीं चाहती... लेकिन..."

"दरअसल तुम्हें अपनी मम्मी से लड़ना-झगड़ना नहीं चाहिये. अपने बड़ों के साथ हम तो ऐसा बर्ताव नहीं करते कभी. उनका कहना हम चुपचाप मान लेते हैं."

"लड़ाई-झगड़ा तो मैं खुद भी नहीं चाहती हूं. लेकिन मम्मी ही शुरू हो जाती है. कहती है—'जाओगी क्यों नहीं? तुम्हें तो पैक करके भेज दूंगी!' मुझे पैक करने वाली वह कौन होती है? ऐज अ ह्यूमन बीइंग मेरी अपनी भी कोई हैसियत है या नहीं? जब देखो, डेटिंग की दुहाई!"

"हिंदुस्तान में इसे प्रचलित किया जाना चाहिए!"

"डेटिंग? मुझे तो शादी करनी ही नहीं! वह मर्दानी भींच, झबरीला सीना, दाढ़ी-मूछें और न जाने कहां-कहां के बालों के ठूंठे पसीने की बदबू से सराबोर बदन—उबकाई-सी आती है!... इससे तो तुम जैसी सहेलियां क्या बुरी हैं?"

"मुझ जैसी नहीं, चमेली जैसी..."

"चमेली से तो तुम मुझे ज्यादा पसंद हो शोना—माई लैंब..."

"सो क्यों?"

"चमेली गंवार थी. तुम पढ़ी-लिखी हो, बुद्धिमान हो. और फिर कोई व्यक्ति क्यों अधिक पसंद है और दूसरा व्यक्ति पसंद क्यों नहीं है—इसकी कोई निर्धारित वजह थोड़े ही हो सकती है."

अपने बारे में यह सुन सिहर उठी. मेरी जैसी सहेली से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हकदार

सर लॉरेंस ओलीवियर अपने मित्र पप्पन के साथ पिकेडली को पार कर रहे थे कि उन्हें एक भिखारी मिला. उस निर्धन व्यक्ति के दुख, उसकी अशक्त पत्नी तथा बच्चों का विशद विवरण सुनकर ओलीवियर ने उसे दस पौंड दे दिये.

आगे बढ़ने पर मित्र ने टोका, "तुमने उसे बहुत अधिक दे दिया. वह तो शायद कोई जालसाज था."

सर लॉरेंस ने शांति से उत्तर दिया, "तुमने उसका वक्तव्य सुना. या तो वह सचमुच निर्धन था या सर्वश्रेष्ठ कलाकार, जैसा आज तक मैंने नहीं देखा. हर हालत में वह दान के उपयुक्त था." □

प्रस्तुति : कल्पना आंचलिया

मित्रता होने पर भी उसे नाज है. धनी और निर्धन के बीच कोई भेदभाव मेरी के शीशे जैसे दिल में नहीं है. कई बार नृत्य की कोई धुन ग्रामोफोन पर चलाकर उसने शोभना को थिरकना सिखाया.

"लेकिन नृत्य में पुरुष भी तो चाहिए न!"

"सो तो है. लेकिन पुरुष के न होने से भी कोई खास फर्क नहीं पड़ता. प्रत्येक व्यक्ति को मन ही मन तय कर लेना चाहिए कि वह पुरुष है या नारी. . . तब आगे की कार्रवाई बड़ी आसान हो जाती है."

दो दिन बाद दोनों की एक संयुक्त फोटो उतारने का प्रस्ताव रोजमेरी ने रखा. पैंट-कमीज, टाई, जूते आदि के साथ रोज और नौ गज की साड़ी में शोभना.

लेकिन इस प्रस्ताव को पूर्णतया ठुकराते हुए शोभा ने कहा, "छी, छी, मेरे पिताजी तो मुझे कच्चा चबा जाएंगे, ऐसी तसवीर देखकर. इस दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं, जो उनकी आंखों से बची रह सके."

"इसकी चिंता तुम मत करो. किसी को कानोंकान खबर नहीं होने पाएगी. शनिवार को स्कूल सुबह लगता है. चार बजे तक यहां आ जाओ. मम्मी ब्रिज खेलने चली जायेगी. मैं फोटोग्राफर को बुला लूंगी. यहीं. लेकिन हां, वही गोटे वाली साड़ी और कान में मोतियों के झुमके ही पहनकर आना. भूलना मत."

"लेकिन इस कदर सज-धज कर मैं घर से बाहर निकल ही कैसे सकती हूं? मां, पिताजी, नौकर आदि क्या कहेंगे! मुझे स्कूल से आने में थोड़ी-सी देर हो जाए तो मां परेशान-सी रहती है. गंगा काकी भी कई तरह के सवालों से परेशान कर देती हैं. पूछती हैं—मास्टर जी कौन-सी क्लास लेते हैं, जरा मैं भी तो जानूं!"

"उनकी छोड़ो भी. तुम जरूर आ जाना. किताब लौटाने के लिए रोज के पास जा रही हूं ही कह देना. एकझोले में सबसे नीचे साड़ी, गहने आदि रखकर उस पर किताबें रख लेना, बस. मैं इंतजार करूंगी."

आखिर शनिवार आ ही गया.

मोतियों के झुमके, नौ गज की साड़ी, बूटीदार जूतियां आदि चीजें झोले में ठूंसकर ऊपर की ओर रोज की किताबें रखीं और शोभना खुले आम रोज मेरी के घर जाने के लिए चल पड़ी.

"कहां जा रही हैं देवी जी?" मां ने हाल में बैठे-बैठे ही आवाज लगायी.

"रोज के पास, उसकी किताबें लौटानी हैं."

"कोई जरूरत नहीं वहां जाने की. सिलाई-कढ़ाई करो. तुम्हारे लिए ही तो सिलाई की मशीन ली है. कपड़े का थान भी मंगा लिया है. मेरे ब्लाउज आदि सिलती रहो. दूसरे कपड़ों की कटिंग की प्रैक्टिस करो. वरन् ससुराल में हमारे नाम के झंडे गाड़ दोगी. . ."

"तुम्हारा तो ससुराल पुराण ही हमेशा चलता है!"

"यह पुराण मेरा नहीं, तुम्हारे पिताजी का है. वे अब इसी कोशिश में हैं, कल शाम धार के दीवान काका आ रहे हैं भोजन पर. उनके साथ श्रीधर भी होगा."

"लेकिन मैं तो अभी गयी और अभी आयी." शोभना ने बड़े ही आजिजी के लहजे में कहा.

"बिल्कुल नहीं जाओगी. सब तैयारी करनी है. . ."

"सो तो कल भी हो जाएगी."

"कल क्या-क्या करोगी? कल तो मुझे रसोई में मदद करोगी तुम. कल सुबह तो मार्केटिंग के लिए भी जाना है, बड़े बाबू जी के साथ. . . लेकिन तुम दूकान के भीतर नहीं जाओगी. बग्घी में ही बैठी रहोगी. कल नौ गज की साड़ी पहनो, दीवान काका को. . ." शोभना जल-भुनकर रह गयी. मजबूरन भीतर लौट आयी.

बेचारी मेरी, इंतजार कर के थक गयी होगी. फोटोग्राफर का चक्कर भी फिजूल गया होगा. अब मेरी बहुत नाराज हो जाएगी, उलाहना देगी, रूठ जाएगी. . .

दो-चार दिनों का ही अंतराल पड़ जाए तो दोनों बेचैन हो उठती हैं. दोनों की मित्रता में अभी-अभी तो बहार आने लगी थी. और अभी यह तूफान!

घरवालों की आंख चुराकर शोभना ने रोज को एक चिट्ठी लिखी—

"माई डियर मेरी. . .

"मैं बहुत बिजी हूं—परसों स्कूल से लौटते हुए तुमसे जरूर मिलूंगी. तभी विस्तार से बताऊंगी. प्लीज, नाराज मत होना. . .

यौर पूअर लैंब. . ."

माली के हाथ में चिट्ठी थमाकर शोभना ने उसे आंख से इशारा किया और खुद किवाड़ों के हैंडिलों को ब्रासो लगाने लगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार के दीवान काका का श्रीघर आने वाला है! श्रीघर!

कोई पांच साल पहले अपने मां-बाप के साथ आया था. छरहरा बदन और सामान्य कद. गुमसुम वृत्ति. सुनहरी मूछें और कोंपल नुमा दाढ़ी. भर्रायी-सी आवाज और मायूस चेहरा. न कैरम खेलने का इच्छुक, न हिंडोले पर झूलने का.

जब भी देखो, किताबों में सिर गड़ाये रहता है.

यही श्रीमान शोभना को देखने आ रहे हैं!

निर्धारित कार्यक्रमानुसार दूसरे दिन शाम को श्रीधर जी का आगमन हुआ. वे अकेले ही आये. दीवान साहब को अचानक किसी महत्वपूर्ण काम के कारण धार में ही रुकना पड़ा.

वकील साहब ने श्रीधर का अत्यंत स्नेहपूर्वक स्वागत किया. शोभना की मां फूले नहीं समा रही थी.

हाल में परदे के पीछे से ही उसने श्रीधर को देखा... शोभना के दिल-ओ-जान पर जैसे वह छा गया. . .शोभना का दिल धड़कने लगा. . . गालों पर लाली छा गयी. माथे पर पसीने की बूंदें उभर आयीं. . . हाथ-पांवों में कंपकपी सी होने लगी. गेंहुआ रंग और गठीला बदन. भव्य माथे पर लहराती जुल्फें. . . गहरे नीले रंग का सूट. . .

शिकंजी के गिलास शोभना ने ट्रे में सजाये. इस बीच उसके उखड़े हुए दिल को कुछ-कुछ तसल्ली-सी होने लगी.

श्रीधर का स्वभाव कैसा होगा? क्या दोनों के दिल के तार मिल सकेंगे? ललितपुर से धार तक नाखून के आकर की रियासत है. बड़ी रियासत से बिंदी जितनी छोटी रियासत में जाना रास आएगा?

भोजन के बाद शोभना के अलावा सभी लोग हाल में इकट्ठा हुए. वकील साहब और श्रीधर की रियासतों में राजस्व कर वसूसी, रियासत की सीमाएं आदि विषयों पर बातें चलीं. श्रीधर का बातचीत का लहजा देखकर शोभना की मां तृप्त होती रहीं.

अब शोभना को भी हाल में बुलाया गया.

शोभना को मजबूरन आना पड़ा. हाल में सोफे पर एक कोने में सिमटकर बैठी रही. . .

कोर्ट के कुछ महत्वपूर्ण दस्तावेज ढूंढने के बहाने वकील साहब वहां से चल दिये. चौका-बर्तन करने का बहाना बनाकर मां भी चली गयी. अब हाल में बचे रहे केवल शोभना और श्रीधर.

"लालच में खाना ज्यादा खा गया!" मौन तोड़ते हुए श्रीधर ने कहा.

"इतना पसंद आया?" गर्दन उठाकर श्रीधर की ओर देखते हुए शोभना ने पूछा.

"बेशक! पसंद क्यों नहीं आता?"

"थैंक्यू." गलीचे की ऊन को पांव के अंगूठे से कुरेदते हुए शोभना यूं ही बुदबुदायी.

शोभना का मुंह खुलवाने के लिए श्रीधर को चुन-चुनकर सवाल करने पड़े.

परीक्षा की जोरदार तैयारी चल रही होगी. . . क्लास में हमेशा पहला नंबर रहता है न? वैसे तुम्हारा प्रिय विषय कौन-सा है. . . परीक्षा के बाद, गर्मियों में कहां जाने का प्रोग्राम है?. . .आदि, लेकिन प्रत्येक सवाल का बड़ा ही संक्षिप्त जवाब वह देती रही. नीची निगाहों से.

श्रीधर बहुत खुश हो गया, क्योंकि उसे अपने घर-परिवार के माहौल के अनुकूल ऐसी ही शालीन लड़की की तलाश थी.

अंततः शोभना की आंखों में आखें गड़ाकर उसने पूछा, "ह्वाट नेक्स्ट?"

"नथिंग. कुछ भी तो नहीं!" शोभना ने शरमाकर कहा.

"क्या मतलब?"

"इट केम आल आफ अ सडन—आप बुरा मत मानिए, लेकिन में शादी-ब्याह से दूर ही रहना चाहती हूं. . ." शोभना ने कह तो दिया लेकिन बाद में उसे पछतावा हुआ.

"तो ये बात है? मैं तो लगभग तय करके ही आया था. वकील साहब पिछले साल जब धार आये थे तो मेरे पिता जी के साथ उनकी बातचीत भी हो गयी थी! मां ने तुम्हारे लिए एक सौगात भेजी है—एनी वे." नाराजगी को दबाने की पूरी कोशिश करते हुए श्रीधर ने कहा.

"मेरे घरवालों ने तो मुझे पूरी तरह अंधेरे में रखा. मुझे तो कल ही पता चला." अहंकार आहत हो जाने के-से लहजे में शोभना ने जवाब दिया.

रात के दस बज चुके तो श्रीधर जाने के हुआ.

"तो चलें अब?"

पल भर के लिये दोनों की आंखें चार हो गयीं तो शोभना की आंखों की अगतिकता ने श्रीधर को अस्वस्थ कर दिया.

लौटते में बंगले की सीढ़ियां चढ़ते हुए शोभना की स्थिति बड़ी दुविधाजनक-सी लग रही थी.

क्या सोचा था और क्या हुआ?

"चोरी-छुपे श्रीधर की झांकी देखकर पुलकित-पल्लवित हुआ मन अब बर्फ-सा जाम क्यों हो गया है?

मन के अंगने में बौरायी हुई ये बहार यकायक जलकर राख क्यों हुई? यह सब कैसे हो गया?

श्रीधर को विदा करते समय शरमाने का नाटक. . . अभिनय . . . दिखावा. मां-बाप को मुगालते में रखकर. . . यह सरासर धोखा है उनके साथ.

प्रतिष्ठित और सुसंस्कृत परिवार के संस्कारों को मटियामेट कर दिया?

असलियत का पता चलने पर मां-बाप के दिल पर क्या गुजरेगी?

दो रियासतों के पुश्तैनी, मित्रतापूर्ण संबंधों पर आंच तो नहीं आएगी? क्या श्रीधर इस अपमान को जज्ब कर लेगा? क्या पिताजी यह महसूस नहीं करते होंगे कि परिवार में हर आदमी का अलग अस्तित्व होता है. . . लेकिन उसकी सजा श्रीधर को किसलिए?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़ल

▣ ऋचा सत्यार्थी

कारवां गुज़रा किया और रहगुज़र देखा किये,
दूर जाते काफ़िले को चश्मे-तर देखा किए.

इक जगह बसकर, बना पाए न अपना आशियां,
ज़िंदगी भर, ये शहर और वो शहर देखा किए.

साथ अपने, अपने साये के सिवा कुछ भी नहीं,
उम्र भर, रहकर अकेले अपना घर देखा किए.

कारवां लुटता रहा और आशियां जलता रहा,
तुमने आंखें मूंद ली थीं, हम, मगर, देखा किए.

उम्र के हाथों से बरसों का खजाना लुट गया,
मुद्दतों इस खेल को हम बेखबर देखा किए.

बढ़ते-बढ़ते प्यास अपनी उस जगह तक आ गई,
जब न पानी मिल सका तो हम ज़हर देखा किए.

वक्त की दूकान पे हर चीज बिकती थी, मगर,
हम वफ़ा को घर से लेकर दर-ब-दर देखा किए.

'शादी करना ही नहीं चाहती' यह वाक्य कहने की जुर्रत कैसे हुई? या कि शोभना की आड़ में मेरी ने ही कहा था वह वाक्य?

करवटें बदलने में ही शोभना की रात बीत गयी.

घर के सभी लोग यही मान रहे हैं कि श्रीधर के बारे में शोभना की प्रतिक्रिया विपरीत तो नहीं ही होगी.

दोपहर को खाने-पीने के बाद लोग सुस्ता रहे थे. इसी बीच मौका देखकर दबे पांव वह घर से चल दी. माली निराई में व्यस्त है. उसे चुप रहने का इशारा कर लंबे-लंबे डग भरते हुए शोभना ओझल हो गयी.

उसी की प्रतीक्षा में रोज बैठी थी. शोभना को देखते ही, वह झपटकर चिल्लायी, "परसों वो फोटोग्राफर आ कर चला गया. कल आ के बताना तो चाहिए था तुम्हें. कितना इंतजार किया मैंने..."

"जरा रुको भी! वही सब कहने के लिए ही तो आयी हूं. लेकिन मुझे सांस तो लेने दो." शोभना ने हांफते हुए कहा.

दोनों भीतर के कमरे में चली गयीं.

"कल हमारे घर धार के मेहमान आये थे. उनके खाने-पीने का इंतजाम, उनकी बाकी व्यवस्था आदि में ही दिन निकल गया."

"कौन थे मेहमान?"

"धार के दीवानजी के सुपुत्र मुझे देखने आये थे..."

"क्या मतलब?"

"मतलब वही. हम दोनों यदि एक-दूसरे को पसंद करते तो हमारी शादी हो जाती."

"यानी कि तुम दोनों ने एक-दूसरे को पसंद नहीं किया?" रोज ने शोभना के करीब आकर पूछा.

"उन्होंने तो मुझे पसंद किया लेकिन..."

"तुम्हें वह रास नहीं आया...यही न?"

"आई डोंट नो...लेकिन पिताजी ने मेरी राय लिये बिना ही..."

"यू आर राइट! एक व्यक्ति के रूप में लड़का कैसा है?" शोभना को बीच में ही टोकते हुए रोज ने पूछा.

"खूबसूरत और जानदार है. लेकिन रोज, आई कुडंट मेकप माई माइंड."

"राइट!"

"अब लगता है, उसे व्यर्थ ही मना किया मैंने. कद्दावर, खूबसूरत, रौबदार... घुंघराले बाल और माथे पर आयी जुल्फें..."

"क्या कहा तुमने? फिर से कहो तो? धार के लफंगे के चक्कर में पड़ना चाहती हो?" गुस्से में भरकर रोज चिल्लायी.

कहीं रोज मजाक तो नहीं कर रही? क्या हो गया उसे? शोभना सहम गयी.

"इस तरह पागल मत बनो रोज!" कहकर जाने के लिए शोभना उठ खड़ी हुई लेकिन उत्तेजित मेरी की भयानक मुद्रा देखकर शोभना भौंचक्की-सी देखती ही रह गयी.

"आई हैव वेटेड लांग इनफ्" कहकर रोज ने एक धक्का मारते हुए शोभना को पलंग पर सुला दिया.

शोभना असहाय-सी लेटी रही. उससे नोक-झोंक करने के से अंदाज में रोज उसके वस्त्रों को नोचने लगी... और पलंग पर लेटे-लेटे ही शोभना फूट-फूटकर रोने लगी. किसी भी तरह से प्रतिकार करने की शक्ति उसके बदन में बची न थी...

अपने आप को संभालते हुए जब वह उठ बैठी तो मेरी अपने आप में खोयी हुई थी.

अपमानित, प्रताड़ित, मलिन अवस्था में शोभना मेमसाहब के बंगले से बाहर आ गयी.

अब दुनिया उसे वीरान, भयावह और निरर्थक-सी प्रतीत होने लगी. उसे अपने आप पर कोफ्त-सी होने लगी.

नोक-झोंक की निशानियोंवाली अपनी देह मिटाने के लिए उसका दिल करने लगा. घर लौटने के बाद मां और गंगा काकी की आंख बचाकर वह खूब देर तक नहाती रही, रगड़-रगड़कर. और फिर भारी सिर दर्द का बहाना करके पलंग पर लेट रही.

"न कोई तिथि है, न कोई समय...जब जी में आए, सिर पर पानी उंडेल लो... सिर में दर्द नहीं होगा तो क्या होगा?" गंगा काकी देर तक बुदबुदाती रहीं. फिर सौंठ घिसने लगीं, लेप बनाने के लिए. रात में हड़बड़ाकर जग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाना, छाती पर राक्षस के बैठने का आभास होना, और राक्षस द्वारा सहलाने-मसलने का आभास होते ही चिहुक-कर आंख का खुल जाना क्या सिद्ध करता है? सीने में दर्द होना, पसीने से तर हो जाना, जी घबड़ाना आदि कई लाइलाज तकलीफें हैं.

सिरहाने का तकिया सीने से चिपकाये वह चुपचाप लेटी रही. हद दर्जे की बेचैनी से वह परेशान है, अकेले सो जाने की हिम्मत अब उसमें नहीं रही.

गहराती रात के साथ ही उसकी तल्खी भी बढ़ने लगी. वह उठकर श्यामल के कमरे में चली गयी. उसे गोदी में ले लिया उसने. उसकी बांहें अपने गले में डलवाकर वह लगभग चिपट गयी उससे. लेकिन श्यामल ने तुरंत करवट बदल ली. अब शोभना की ओर उसकी पीठ थी.

श्यामल के पलंग के पास ही गंगा सोयी थीं. उन्हें जगाने की कोशिश शोभना ने की.

"गंगा काकी, मेरे कमरे में चलिए. मेरे साथ सोइए. मुझे बहुत डर लगता है. . . "

"उसमें डरने की क्या बात है? शांति से सो जाओ. पति के घर जाते समय शुरू-शुरू में ऐसा ही होता है. बाद में आदत हो जाएगी. . . जाओ."

शोभना को मजबूरन अपने कमरे में लौटना पड़ा.

लेकिन यह हुआ कैसे?

रोज की सुंदर काया में एक खुरदुरा मर्द छुपा है, यह समझ ही नहीं पायी शोभना.

समझ नहीं पायी?

नहीं, यह पूर्ण सत्य नहीं है. रोज की मर्दानगी पर फिदा होकर ही तो शोभना अनजाने में उसकी ओर आकर्षित होती रही.

अनजाने में नहीं, जान-बूझकर.

लेकिन स्थिति इस कदर बिगड़ने की उम्मीद भी तो नहीं थी उसे. रोज के बारे में अतीव घृणा और सहानुभूति, झुंझलाहट और दया. इन दो पाटों के बीच उसकी संवेदना पिसती रही. मकड़ी के जाल में फंसी मक्खी-सी.

इस घने, निविड़तम जंगल में रास्ता मिले तो कैसे? तन-मन के परखचों को मिटाने की भी कोई दवा हो सकती है? ये दाग मिटाने का कोई उपाय हो सकता है? काई-शैवाल भरे तालाब में डूबने से बचने का कोई रास्ता है?

शोभना को श्रीधर की बहुत याद आयी. उससे मिलने, बैठकर उसके साथ बतियाने, उसके मुंह से सांत्वना के दो शब्द सुनने के लिए वह छटपटाने लगी. आश्वासक स्पर्श से दिल के दाग धो डालने के मौके को वह तलाशने लगी.

लेकिन श्रीधर के लिए तो स्वयं उसी ने सब दरवाजे बंद कर दिये थे बल्कि अपने गिर्द एक गहरी खाई भी उसने बनवायी.

श्रीधर का चेहरा, उसकी बातें, उसकी अदाएं, उस के बोलने का अंदाज़, आदि बातों का स्मरण करते-करते हो उसकी आंख लगी.

उतरा हुआ चेहरा और आंखों में जलन. तीन रातों से यही सिलसिला चल रहा था. बेटी के रंग-ढंग देखकर वकील साहब और शोभना की मां के मन में शक पैदा हो गया. शीत युद्ध बर्फीला बन गया. दूसरे दिन सुबह शोभना के नाम से आयी चिट्ठी वकील साहब ने चपरासी के हाथों उसके पास भिजवा दी.

नहाने के लिए गुस्सलखाने में जाने के बाद उसने कांपते हाथों से चिट्ठी खोलकर पढ़ना चाहा.

शोभना बाई,

विवाह के प्रति अपनी असहमति आपने स्पष्ट रूप से व्यक्त की. धन्यवाद. इस साहस के लिए बधाई और सुखमय जीवन की समस्त शुभकामनाओं के साथ——श्रीधर

शोभना की आंखें भर आयीं. मन खिलने-खिलखिलाने लगा. गालों पर लाली छा गयी. भीतर ही भीतर आनंद की हिलोरें उठने लगीं. पानी से भरी बाल्टी में औंधे लोटे को छोड़कर वह उंगलियों से दीवार पर छींटें उड़ाने लगी और सोचती भी रही.

घरवालों की आंखों से बचकर मेमसाहब के बंगले से आगे क्लब तक पहुंचे तो कैसे?

जैसे भी हो, पहुंचना तो है ही.

दिन ढलने लगते ही वह बुदबुदाने लगती——रोज मेरी की किताबें लौटानी हैं. . . दोपहर को ध्यान में नहीं आया. . . उसे तो सख्त जरूरत थी इन किताबों की. . . घरवालों के कानों तक बुदबुदाने की यह आवाज जैसे-तैसे पहुंच जाती.

झोले में कोई भी दो-चार किताबें ठूंसकर फूलों वाली साड़ी पहने वह चल पड़ती. शाम के झुटपुटे में. . .माली को साथ ले कर.

बेशक!

क्योंकि रास्ते में बिच्छू, कांटा, सांप. . . □

● अनुवाद : प्रकाश भातंब्रेकर

चलते-चलते

उर्दू के प्रसिद्ध शायर 'दाग' मुगल बादशाहों के रिश्तेदारों में थे. उन्होंने लाल किले में होश संभाला. उस्ताद 'जौक' से फने-शायरी में फैज पाया.

उस्ताद जौक जब मृत्यु शैया पर पड़े अंतिम सांस ले रहे थे, तब दाग उनसे मिलने गये और मिलते ही पूछा, "उस्ताद, अब बताइए कैसा मिजाज है."

उस्ताद ने सोचा, शागिर्द इस आखिरी समय में शायरी बोलकर लाजवाब करना चाहता है. वे धीरे से बोले, "पैमाना भर चुका है छलकने की देर है."

यदि दोनों वाक्यों को सम्मिलित कर दिया जाए तो एक शेर बन जाता है:——

उस्ताद अब बताइए कैसा मिजाज है,
पैमाना भर चुका है, छलकने की देर है. □

——मंजुला विक्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूख

• चित्रा मुद्गल

आहट सुन लक्ष्मा ने सूप से गर्दन ऊपर उठायी. सावित्री अक्का झोंपड़ी के दरवाजे पर खड़ी भीतर झांकती दीखी. सूप फटकारना छोड़कर वह उठ खड़ी हुई, "आ, अंदर कू आ अक्का." उसने साग्रह सावित्री को भीतर बुलाया फिर झोंपड़ी के एक कोने से टिकी झिरझरी चटाई कनस्तर के करीब बिछाते हुए उस पर बैठने का आग्रह कर स्वयं सूप के निकट पसर गयी. सावित्री ने सूप में पड़ी ज्वार को अंजुरी में भरकर ध्यान से देखा, "राशन से लिया?"

"कारड किदर मेरा!"

"नई?" सावित्री को विश्वास नहीं हुआ.

"नई."

"अब्बी बना ले."

"मुश्किल न पन".

"कैइसा?...अरे टरमपरेरी बनता न. अपना मुकादम है न परमेश्वर, उसका पास जाना. कागद पर नाम-वाम लिख के देने को होता, पिच्छू झोंपड़ी तेरा किसका, गनेसी का न? उसको बोलना कि वो पन तेरे को कागद पे लिख के देने का कि तू उसका भोंड़ोतरी... ताबड़तोड़ बनेगा तेरा कारड." उसने पास ही चीकट गुदड़ी पर पड़े कुनमुनाये बच्चे को हाथ लंबा कर थपकी देते हुए निश्वास भरा, "जायेगी.".

"जायेगी नई, कलीच जाना." सावित्री ने सयानों-सी ताकीद की. फिर सूप में पड़ी गुलाबी ज्वार की ओर संकेत कर बोली, "ये दो-बीस किल्लो खरीदा न. कारड पे ये एक-साठ मिलता."

बच्चा फिर कुनमुनाया पर अबकी थपकियाने के बावजूद चौंक कर रोने लगा. उसने एक स्तन उसके मुंह में दिया. कुछ क्षण चुकरने के बाद वह स्तन छोड़ बिरझाया-सा चीखने लगा, "क्या होना... आताच नई." उसने असह्य दृष्टि सावित्री पर डाली.

"कांजी दे."

"वोईच देती पन ... "

अपना पेट भरने की खातिर दूसरे के बच्चे को भूखा रखना जरूरी क्यों हो जाता है! मौत की शक्ल में कैसे बदल जाती है भूख?...मानवीय एहसास को रेखांकित करती कहानी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावित्री ने पूछा तो प्रत्युत्तर में लक्ष्मी का चेहरा उतर आया, "दरवाजा किदर खोलते फिलाट वाले? एक-दो ने खोला तो पिच्छू पूछी कि भांडी-कटका के वास्ते बाई मांगता तो बोलने को लगे कि किदर रेती, किदर से आयी, तेरा पेचानवाली कोई बाई आजू-बाजू काम करती क्या? करती तो उसको साथ ले के आना. हम तुमको पेचानते नई, कैसा रक्खेगा? और पुच्छा, ये गोदी का बच्चा किसका पास रक्खेगी जबी काम कू आयेगी. मैं बोली, बाकी दोनों बच्चा पन मेरा सोटा-सोटा. संभालने कू कोई नई, साथेच रक्खेगी. तो दरवाजा मेरा मूं पेच बंद कर दिये. . . "लक्ष्मा का गला भर्रा आया.

"सुबुर कर, सबुर कर रे . . काम मिलेगा, किदर न किदर तो मिलेगा. मैं पता लगाती. कोई अपना पेचानवाली बाई मिले तो. . "सावित्री ने उसे ढाढ़स बंधाया. उसका चेहरा घुमाकर आंसू पोंछे.

अपने से छोटा दुख तसल्ली नहीं देता. बड़ा दुख जरूर साहस पिरो देता है. लक्ष्मा ने सावित्री अक्का की मुट्ठी अपनी मुट्ठी में भींच ली.

"कल मेरा दुकान पर आना. सेठ बोत हरामी हय पन मैं हाथ जोड़ूंगी तेरे को रखने के वास्ते. और हां, बड़े को भेजना चावल के वास्ते."

उसने स्वीकृति में सिर हिलाया.

सावित्री झोंपड़े से बाहर आयी तो लक्ष्मा की दयनीय स्थिति पर मन उमड़ आया. अच्छी गृहस्थी कट रही थी. पति मिस्त्री था. एक दिन का तीस रुपया लेता था. एक सुबू काम शुरू किया ही था कि बांस के सहारे टिके पांव बॉलकनी पर पलस्तर चढ़ाते फिसल गये. पंद्रहवें माले से नीचे जो गिरा. प्राण-पखेरू उड़ गये. सेठ खड़स था. केस बनाया कि मिस्त्री पिये हुए था. हजार रुपये लक्ष्मा को थमा के ही छुटकारा पा गया.

तब वह भी काम नहीं कर सकती थी. मिस्त्री मरा तो वह पेट से थी. सातवां चल रहा था. तिस पर वक्त यह. एक काम दस मजूर. काम मिले भी कैसे? फिर आज मुसीबत का रोना तो एक से एक बेईमान ओढ़कर निकलते हैं. किसी के पास कोई असली जरूरतमंद भी पहुंचे तो कोई विश्वास कैसे करे?

"मैं भेजती एक वाटी चावल." सावित्री उसका आशय समझ उठ खड़ी हुई.

उसने मनुहार पूर्वक सावित्री की बाहें पकड़ बैठाते हुए कहा, "थोड़ा देर बैइठ न अक्का, मैं इसको भाकरी देती." सावित्री बैठ गयी. वह उठकर ज्वार की रोटी का एक टुकड़ा ले आयी और बच्चे के मुंह में मींस-मींसकर डालने लगी. बच्चा मजे से मुंह चलाने लगा.

वह बनिये की दुकान के सामने खड़ी है. सावित्री सेठ से उसकी मुसीबतों का रोना रोकर उस पर दया करने की सिफारिश करके, उनके आदेश पर कि जाओ अपना काम करो, एक बड़े-से झारे से अनाज साफ करने करने में लग गयी. एक ओर चारदरनुमा टाट पर पंजाबी गेहूं का ढेर लगा है. पहले सेठ से उसके मेहनताने का करार गोनी पीछे दो रुपया था, जितनी साफ करेगी उतना पैसा. फिर सेठ को लगा कि इस सौदे में उसका नुकसान यूं है कि नौकर गोनियां जल्दी-जल्दी निपटाने के पीछे सफाई में लापरवाही बरतते थे और फ्लैटवाले ग्राहक कंकड़-पत्थरों के निकलने पर उनसे प्रायः आपत्ति प्रकट करते कि उनके यहां जिस मुताबिक दाम लिये जाते हैं, सामान उतना साफ-सथुरा नहीं मिलता. सेठ ने फिर दिन के हिसाब से पैसे तय कर दिये. अब स्थिति बेहतर है. दोनों नौकरानियां, सावित्री और कलाबाई, मन लगा के काम करती हैं.

सेठ ने फुरसत पायी तो उसकी ओर मुखातिब हुए पूछा कि वह पहले कहां काम करती थी. उसके बताने पर कि मिस्त्री पति जिंदा थे तो वह भी बेगारी करती थी, ईंट-गारे के तसले ढोती थी और पिछले डेढ़ साल से वह बाकायदा किसी नौकरी पर नहीं है, सेठ ने उसे अजीब-सी नजरों से देखा और पूछा कि क्या उसके यही एक बच्चा है जो गोद में है? उसके यह बताने पर कि इसके अलावा उसके दो बच्चे और हैं, सेठ ने उन बच्चों की उम्र जाननी चाही. उसने बेझिझक बता दिया कि बड़ावाला छह का है, मंझला चार का. सेठ ने तत्काल जवाब दे दिया, "केइसा रक्खेगा तुमेरा को? बड़ा बच्चावाली औरत अपने को नई पड़वड़ता. गोनी पीछे किलो-डेढ़ किलो कचरा निकलता है, ज्यादा निकलेगा तो डिपाजिट में कट जायेगा. बोलो?"

उसे लगा कि उसकी देह का पूरा खून निचुड़कर उसकी कनपटियों पर सिमट आया है और जरा-सा दबाव बढ़ने पर फव्वारे-सा फूट पड़ने की आशंका है. छोटा कमर पे लगा उसकी पकड़ से नीचे खिसकता महसूस हुआ. संभली. मुड़कर बिना सावित्री की ओर देखे चल दी. उधर देख सकने का साहस जुटा नहीं पायी. सावित्री को जरूर लगा कि सेठ ने उसको इनकार नहीं किया बल्कि जैसे उसे ही नौकरी पर से निकाल दिया. जो औरत अनाज के कचरे में से उसके बच्चों के लिए घुघरी बनाने के लिए दाने चुन लाती है वह. . . सावित्री के चेहरे की लाचारगी और पीड़ा निश्चित ही उसके मार्माहत होने से कम नहीं होती. लेकिन जानती है यही औरत दिया-बाती के समय अनाज की गोनियों के मुंह सिल जब झोंपड़ी में लौटेगी तो उसे हिम्मत न हारने की घुट्टी पिलाने जरूर आयेगी.

झोंपड़ी पर पहुंची तो दोनों बच्चों को घर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़ल ▣ मीनाक्षी

पुश्त से चिपकी पड़ी हैं कुर्सियां,
रीढ़ की हड्डी बनी हैं कुर्सियां.

कद हुए इनके बड़े, या के हमीं,
हो गये बौने, बड़ी हैं कुर्सियां.

फाइलों के फेंकती हैं पेंतरे,
सांप-सीढ़ी खेलती हैं कुर्सियां.

साथ रखते हैं सभी हरदम इन्हें,
आज रिश्तों से सगी हैं कुर्सियां.

गांव का चौपाल अब भी है जुड़ा,
शहर की टूटी पड़ी हैं कुर्सियां.

नदारद पा आहत मन की पीड़ा गुस्से, खीझ और चिड़चिड़ाहट में बदल गयी. उल्टे पांव उन्हें खोजने लपकी. वे सड़क के किनारे गटर में कुछ बच्चों के साथ मछलियां पकड़ते दिखे. उन्हें लगभग घसीटते हुए लायी और लाती पर पटक धमाधम पीटने लगी. मानो वह बच्चों की नहीं उस मोटे सेठ की पीठ हो जिसने उन्हीं के चलते उसे नौकरी पर रखने से इनकार कर दिया.

पिछले महीने ही जब उसका मन बहुत विचलित हो उठा था, उसने तय कर लिया था कि वह सावित्री से प्रार्थना करेगी कि अक्का उसे कुछ पैसे दे दे. वह बच्चों समेत चली जायेगी. ससुराल में तो गुजर है नहीं. मायके में बड़े भाई हैं. उन्हीं के पास रहकर खेतों में मजूरी कर लेगी. मगर सावित्री अक्का ने उसे समझाया था कि जो वह सोच रही है अब गांवों में भी संभव नहीं रहा. गांवों की हालत तो यहां से भी बदतर है. मजूरी, वह भी किलो भर चावल. . . पर यहां तो फिर भी गनीमत है. देर-सबेर कुछ न कुछ जुगाड़ हो ही जायेगा. यूं छिट-पिट तो कुछ न कुछ कर ही रही है. फिर भाई भी बाल-बच्चेवाला है. महीने-डेढ़ महीने की बात हो तो सभी रिश्तेदार निबाहेंगे लेकिन जब उन्हें यह पता चल जायेगा कि वह सपरिवार हमेशा के लिए उनकी छाती पर आ बैठी है तो सारी माया-ममता धुल जायेगी. उसे सावित्री अक्का की बात तर्कसंगत लगी थी. अपने बारे में भी खूब सोचा था तो पाया था कि गांव जाने की इच्छा स्वयं उसकी भी नहीं थी. किंतु पता नहीं क्यों, जब भी वह टूटने-हारने लगती स्वयं को इसी विकल्प के सहारे भुलावा देने की कोशिश करती कि ऐसा नहीं है कि इस दुनिया में उसका अपना कहने लायक कोई नहीं है. . .और उसने पाया है कि इस भ्रम ने कई दफा उसे शक्ति दी है.

बच्चे लादी पर पड़े-पड़े ही सो गये दिखे. छोटे को भी गुदड़ी पर थपका कर वह यह सोचकर उठ खड़ी हुयी कि जब तक वे सो रहे हैं वह भाकरी निपटा ले. दोपहर के बाद मुकादम अंजैया के पास जायेगी. एक तो राशन कारड के बारे में पूछेगी कि क्या वाकई उसका कारड बन सकता है? दूसरे उसने 'हाइवे' पर बन रही सड़क के ठेकेदार से उसके काम के बारे में पूछने का आश्वासन दिया था उसका क्या हुआ? उसे यह भी खयाल आया कि पड़ोस की भैयानी उसे एक किलो हलदी कूटने को दे गयी थी जिसकी कुटाई वह खर्च के लिए पहले ही ले चुकी है. उसे भी करना है. खैर भाकरी करके बाहर बैठ कूट के दे देगी. भीतर धमक से बच्चे सोते से जग जायेंगे.

मुकादम के यहां से प्रसन्न मन लौट रही है. दोनों काम हो गये. 'कारड' के लिए गनेसी से लिखवाकर दे आयी कि वह उनकी भाड़ोत्री है और उसका कहीं कोई 'कारड' नहीं है और मुकादम अंजैया ने कहा कि उसने ठेकेदार से भी बात कर ली है. कल सुबह वह उससे मिलवा देगा. सात रुपये रोज मिलेंगे. सड़क पर पत्थर कूटने होंगे. जब डामर पड़ने लगेगा तब काम खत्म हो जायेगा. पर यह उसकी मेहनत और स्वभाव पर निर्भर है कि वह ठेकेदार के अगले काम में मजूरी पाती है या नहीं. गली में मुड़ने लगी तो एकाएक खयाल आया कि टेंट में जो रुपया सहेजा हुआ है उसमें से दोनों बच्चों के लिए दस पैसेवाली मीठी गोली लिये चले और चार आने की चाय की पत्ती. बड़े से चार आने का दूध भी मंगा लेगी. गुड़ थोड़ा-सा रखा ही हुआ है. सावित्री अक्का को 'चा' के लिए लिवा लायेगी.

घर पहुंची तो बच्चे हमेशा की तरह नदारद मिले. मगर आज उन पर गुस्सा नहीं आया बल्कि उनका लड़कपन स्वाभाविक लगा. ऊपर से मजबूरी भी कि घर से बंधें भी तो कैसे! कोई उन्हें बैठानेवाला तो हो.

सिगड़ी सुलगा कर कनस्तर से आटा निकाल मांड़ने बैठ गयी. एक दो भाकरी ज्यादा ही बना लेगी. सावित्री अक्का को यहीं खा लेने के लिए बाध्य करेगी. मगर अगले ही पल मन घुप्प-से बुझ गया. खिलायेगी काहे से? उनके दांत भी कमजोर हैं. सूखी भाकरी चबाने में भी दिक्कत होगी. देखेगी, बना तो लेती ही है. अपने मन की उमंग को कैसे और कहां दबाये. और इस उमंग का साक्षी सावित्री अक्का से बढ़कर और कौन हो सकता है.

काम निपटाकर बच्चों को ढूंढ-ढांढकर पकड़ लायी. उन्हें मीठी गोली देकर लड़ियाते हुए छोटे को खिलाने की ताकीद कर, सावित्री के झोंपड़े की ओर चल दी. वह पहुंची ही थी कि उसने उन्हें अपना दरवाजा खोलते हुए पाया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आ लक्ष्मा." सावित्री ने उसे भीतर बुलाया. फिर उसके कुछ बोलने से पहले ही कहने लगी, "मेरे को बोत दुख हुआ. . .सेठ ने. . ."

"अक्का मैं. . ." वह उन्हें सुबह के वाकये पर खिन्न न होने देने के आशय से तुरंत खुशखबरी सुनाना चाहती थी मगर वे अपनी ही धुन में डूबी उसके उत्साह को अधैर्य के अर्थ में लेकर बात काटती बोलीं, "देख, तू घबरा नई, एक अऊर भी रास्ता हय, मेरे को कलाबाई ने बताया कि एक औरत हय जो सोटे बच्चे लोगों को अपने पास रखती हय, संभालती हय, शाम कू तेरे कू बच्चा वापस कर जायेगी. साथ में पैइसा भी देगी. मेरे को बात जमा. बच्चे का वास्ते तेरे को काम नई मिलता न. फिर काम करने को सकेगी."

वह कुछ भी समझ नहीं पायी. सावित्री अक्का का क्या तात्पर्य है. कौन-सी ऐसी औरत है जो बच्चे को दिन भर अपने पास रखेगी भी, संभालेगी भी और शाम को उसे लौटायेगी भी तो साथ पैसे भी देगी. पर इस वक्त उसने सावित्री अक्का को अधिक छेड़ने के उपयुक्त नहीं समझा. सुबू वे उसे लेकर झोंपड़े पर आयेंगे ही तभी सारी बात स्वयं पता चल जायेगी. उनको ढिबरी जलाते देख वह उठकर उनके निकट आ खड़ी हुई और आतुर स्वर में बोली, "अक्का घर कू चल. . .तेरे लिए मैं चा करेगी. खाना भी तू बच्चा लोगों के साथ खाना. भाकरी करके रख आयी मैं. . ."

सावित्री अबूझ-सी उसकी ओर मुड़ी.

"हां अक्का, मुकादम बोला कि वो मेरा 'कारड' बनायेगा और कल से मेरे को काम पर भी जाना."

"अइयो!" सावित्री की आंखों में एकाएक विस्मय टंग आया.

उसने सारी बात उन्हें सुना डाली और पाया कि खुशी से अक्का की आंखों में गीली चमक पैदा हो आयी है.

रास्ता कट नहीं रहा. वैसे भी सांताक्रुज कोई नजदीक नहीं. उसके झोंपड़े से डेढ़ कोस से कम नहीं होगा. यह दूरी जाते वक्त फलांग भर लगी थी. अब वापसी में सुरसा का मुंह हो रही है.

ठेकेदार बोला था, "जिस मजदूरिन को मैं काम छोड़ गया समझा था, और जो पिछले तीन दिन से लापता थी, आज अचानक काम पर लौट आयी है. उसी की जगह पर मैंने मुकादम से कहा था कि तुम्हें रख लूंगा. पर अब जब वह लौट आयी है, तो इस समय तुम्हें काम पर रखना मुमकिन नहीं. हफ्ते भर बाद जरूर चक्कर लगा लो. कन्तू शायद छुट्टी पर जाये."

सभी उसके लिये सोच रहे हैं कि कुछ हो जाये मगर उसकी ही किस्मत फूटी है तो कुछ कैसे?

सुबह कितने ताव से सावित्री अक्का ऐंठ गयी थी कि उसने उसकी मदद के लिये इतना नीच रास्ता सोचा कैसे? कैसे वह इस औरत को उसके पास ले आयी? अक्का भी चिढ़ गयी थी कि वे उसे खटिया डाल लेने को तो नहीं कह रही थीं. . .? फिर बच्चों के लिए वह कह ही क्या पा रही है? कांजी तक तो किसी को चार दाने के साथ पिला नहीं पाती. कुछ दिनों तक यही हाल रहा तो सोच ले कि बच्चों की क्या गति होगी. उन्हें भी कलाबाई के मुंह से पहले यह बात सुनकर बड़ी ठेस पहुंची थी कि कोई अपने दिलों के टुकड़ों को भीख मांगनेवाली औरत को किराये पर कैसे दे सकता है? ऐसी गलीज हरकत से तो डूब मरना अच्छा है और इसी अंतर्द्वंद्व की वजह से सच्चाई जानते हुए भी उन्होंने उस शाम उसे सच नहीं बताया था. पूरी रात वे सोचती रहीं कि उचित-अनुचित क्या है. जब हम स्वयं के बच्चे के लिए कुछ नहीं कर पा रहे तो मजबूरी का तकाजा हो जाता है कि काम अच्छा हो या बुरा, हम क्यों न उसे मान लें? हां, कल अगर उसे काम मिल जाता है और वह बच्चों को आराम से पास-पोस सकती है तो अपना बच्चा उससे वापस ले लेंगे. फिर भीख तो वह मांगेगी, बच्चे से थोड़े ही मंगवायेगी. बच्चा तो दिन भर उसकी गोद में रहेगा. वो जिस भी बच्चे को किराये पर लेगी उसको अपने साथ-साथ रखेगी.

वह अवाक् सुने जा रही थी. उस औरत ने उसकी नाराजगी को अन्यथा न लेते हुए, अपनी बगल में लटके चीकट थैले से एक प्लास्टिक की दूध की बोतल निकाल कर उसे दिखायी थी और कहा था कि वह बड़े बच्चे को नहीं, गोदवाले को किराये पर लेती है और उसकी देख-रेख की पूरी जिम्मेवारी उठाती है. चूंकि छोटे बच्चे के दूध-बिस्किट आदि पर ज्यादा खर्च आता है अतः उसी हिसाब से उसका किराया कम हो जाता है. किराया वह दो रुपये मात्र देगी और जिसे वह हर शाम नकद थमा दिया करेगी. बच्चे की किस्मत से अगर उसे कमाई ज्यादा होगी तो वह उसका किराया भी बढ़ा देगी. बच्चों की कमी नहीं है पर गोदवाले कम मिलते हैं. कलाबाई ने उसका जिक्र किया तो वह चली आयी. उसे क्या पता था कि भीख मांगने में कितनी मेहनत उठानी पड़ती है. विरार से लेकर चर्च गेट, चर्चगेट से लेकर विरार. . .डिब्बे-डिब्बे खड़े-खड़े यात्रा करनी पड़ती है. यात्री-यात्री गिड़गिड़ाना पड़ता है. बच्चे को उठाये-उठाये बाजू दुख जाते हैं. हगना-मूतना अलग धोते रहो.

उसने लगभग चीखते हुए उस औरत को घर से निकाल दिया था और संयत हो अक्का से बोली थी कि वे अब उसकी चिंता न करें. आज से काम पर जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही रही है. सब संभल जायेगा. मगर . . .बंधी हुई उम्मीद पलक झपकते ही चूर हो गयी.

ठेकेदार ने फिर बुलाया है. ईश्वर करे वह मजूर जरूर छुट्टी पर चला जाये फिर मुकादम ने भी आस बंधायी है.

तभी बिजली की तड़क-सा विचार कौंधा, 'अगर तब तक के लिए वह छोटे को उस औरत को किराये पर उठा दे तो? उसका तो पेट भरेगा ही. दो रुपये जो ऊपर से मिलेंगे उसमें किलो भर आटा चावल आ जायेगा. बड़े और मंझले के पेट में भी दाने पड़ जायेंगे. फिर कौन उसे हमें हमेशा के लिए देना चाहती है. कुछ रोज की बात है. काम मिलते ही वह बच्चा उस औरत से छुड़ा लेगी. किसी को पता भी नहीं चलेगा. सावित्री अक्का की बात और है वे तो उसकी दुख-सुख की साथिन हैं. शाम को अक्का से जाकर कह देगी कि उसे प्रस्ताव मंजूर है. लक्ष्मा के पांव सावित्री अक्का की दुकान की ओर बढ़ गये.

बड़े और मंझले के लिए कटोरे में भात परोस कर ठंडा करने की मंशा से रखा ही था कि उसने पाया कि बिरझाये से रोते हुए छोटे ने भात की थाली पर बैंया-बैंया निकट जाकर एकाएक झपट्टा मारा. थाली लादी पर उलट गयी. वह क्रोध से बावली हो उठी. ताड़-ताड़ उसने छोटे को थप्पड़ जड़ दिये, "तेरे को दूध होना, बिस्किट होना. . .अक्खा दिन पेट भर खाना होना. पन घर में आके दर रोज बोम-बोम करना! येई वास्ते तो तू बढ़ता नई. वैसा का वैसाच. . .हरामखोर. सत्यानाश किया न इतना भात?"

छोटा मार खाकर आंखें उलट बैठा. उसके हाथ-पांव ऐंठने लगे. वह घबरा गयी. यह क्या हो गया उसे. कभी तो ऐसा नहीं होता. ऐसा नहीं है कि पहली बार पिटाई की है उसकी. कई दफे भिन्नाकर उसने उसे उठाकर पटक तक दिया है. रूआंस छूटने लगी. हाथ-पांव मल-मलकर कोशिश की कि वह थोड़ा होश में आये पर उसने महसूस किया कि छोटे की देह निरंतर ठंडी पड़ती जा रही है. वह उसे ज्यों का त्यों छोड़कर सावित्री अक्का के झोंपड़े की ओर दौड़ी. अक्का को लेकर लौटी तो उसने पाया कि मंझली और बड़े के रोने का स्वर सुनकर पास-तमाम पड़ोसी इर्द-गिर्द एकत्र हो आये हैं. अक्का ने छोटे को फौरन गोद में उठाया और मुख्य सड़क पर स्थित डा. चिरवालकर के दवाखाने की ओर दौड़ी. पीछे-पीछे संशंकित कुछ अड़ोसी-पड़ोसी भी. डा. चिरवलकर ने बच्चे की नाजुक हालत देखी तो सीधे हथियार डाल दिये कि बच्चे का इलाज उनके वश का नहीं. उसे फौरन भाभा अस्पताल ले जाओ. बच्चे को ग्लूकोज चढ़ाना पड़ेगा. लक्ष्मा ने घबराकर सावित्री अक्का की ओर देखा तो सावित्री ने उसका आशय समझकर सांत्वना दी कि वह चिंता न करे और तुरंत एक टैक्सी रोक ले. पैसे उनके पास हैं.

अस्पताल में बच्चे को हैड नर्स ने देखा तो उसकी मरणासन्न हालत देखकर चौंकी. बिगड़ी कि बच्चे को अस्पताल तुम लोग तभी लाता जब बच्चा मरने कू होता है. क्यों लाया इसको अभी इधर?" फिर उसने तुरंत डाक्टर के पास खबर भिजवायी और बाबा नर्स को बच्चों के फटाफट इमरजेंसी वार्ड में ले चलने की ताकीद की. अपने धड़कते कलेजे थामे वे बाहर बैठे टकटकी लगाये वार्ड की ओर तकते रहे. जैसे ही कोई नर्स बाहर आती दिखती, लक्ष्मा अधीर हो आशास्पद भाव से उस ओर लपक पड़ती. तकरीबन घंटे भर असाध्य प्रतीक्षा के बाद डाक्टर वार्ड से उनकी ओर आते दिखे. उन्होंने निकट पहुंचकर उनसे पूछा कि उन चारों में से बच्चे की मां कौन है? सावित्री ने लक्ष्मा की ओर संकेत किया. डाक्टर ने पलभर लक्ष्मा को भेदती नजरों से देखा फिर रुक्ष स्वर में बोले, "बच्चों को खाने को नहीं देती थी क्या? बच्चा भूख से मर गया. उसकी आंतें सूखकर चिपक गयी थीं. . ."

"क्या?" उसके गले से आरी-सी काटती एक करुण चीख फूट पड़ी, "पन वो तो बोलती होती उसको दूध देती, बिस्किट खिलाती. . ." उस पर बेहोशी छायी जा रही थी. साथ आयी औरतों ने उसे थाम लिया.

एक औरत कह रही थी, "अब रोने से क्या. . . अभागिन काय कू दी तू अपना बच्चा?"

और लक्ष्मा को कुछ सुनायी नहीं दे रहा. उसे सिर्फ दिखायी दे रहा है दूध भरी बोतल, बिस्किट का डब्बा, पिचकी आंतें और एक बच्चे की लाश! " ◻

● 300-डी, पॉकेट II, मयूर बिहार, दिल्ली-91.

आसपास बिखरी कहानियां

अप्रत्याशित

▣ कुमार क्रांति

"अजी सुनते हो?"

—"कहो क्या कहती हो?"

—"राकेश की चिट्ठी आयी है."

—"तो मैं क्या करूं? कुंअरजी की पढ़ाई में जेवर तो पहले ही होम कर दिये. अब बर्तन-मांडे बेचो जाकर."

—"पूरी बात सुनी नहीं और उखड़ गये. वह पुलिस में सब-इंस्पेक्टर हो गया है. दो-चार दिन में घर-आकर ट्रेनिंग के लिए रवाना होगा और. . ."

—"हैं ऽ ऽ लाओ चिट्ठी मुझे दो. मैं समझा, हमेशा की तरह पैसे मंगाये होंगे." ◻

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतिम प्रहर की महफिल

कणा बसु मिश्र

"दूध लेओ जी!" पूर्वी आकाश में अभी अच्छी तरह प्रकाश नहीं फूटा, मगर ग्वालिन क्षमा बाहरी दरवाजे पर हांक लगाकर मोहल्ले-भर को जगा देती है.

मेरी नौकरानी इतनी जल्दी नहीं आती, सो मुझे ही बिस्तर छोड़कर उठना पड़ता है. दरवाजा खोलकर आंखें मलते हुए बनावटी क्रोध से कहती हूं, "इतनी भी क्या जल्दी है, क्षमा? थोड़ी देर से भी तो आ सकती हो!"

नपने से दूध डालते हुए जोर से हंसकर वह कहती है, "जल्दी कहां है दीदी, सूर्य देवता अंगड़ाई ले रहे हैं."

"लिया करें, इतनी जल्दी आओगी तो कल से तुम्हें दरवाजे पर बिठाये रखूंगी."

क्षमा पूर्ववत् हंसते-हंसते कहती है, "तो कल से मोहन दूध ले आयेगा. नौ बजे तक बैठी रहना फिर. . ."

क्षमा मेरी मजबूरी समझती है. शहरी लड़की हूं. साढ़े छह बजे बिस्तर से उठते ही चाय चाहिए वरना आलस नहीं जाता, कामकाज का उत्साह नहीं होता. तभी क्षमा से पहले ही दिन कह दिया था कि दूध जल्दी चाहिए. मगर जल्दी का अर्थ समझा दिया था : छह से साढ़े छह के बीच. और वह समझी पांच बजे. तभी से यह कर्म-भोग चल रहा है.

मोहन क्षमा का भतीजा है. उसकी सुबह शुरू होती है आठ बजे. यह तो और भी यंत्रणादायक है. तभी छूटते ही उत्तर देती हूं, "मोहन को भेजने की जरूरत नहीं देवी, तुम्हीं आ जाना."

वह कपड़े में मुंह छिपाकर हंसती है. फिर मेरे चेहरे की ओर देखकर कहती है, "तुम लोगों के जमाने में आज सब कुछ बदल गया है. हम लोगों के वक्त आखिरी पहर सियार के बोलने के साथ ही भोर हो जाती थी. तभी दिया जलाकर ओसारा साफ करने में लग जाती. काम के झमेले में कब सुबह होती, कब सांझ गहरा आती, पता ही न चलता. सास कहती, गिरस्थीवाली औरतों को सबसे पहले उठना पड़ता है और सबके बाद सोना पड़ता है. एक दिन तो नींद तोड़ने के लिए सास ने पीठ पर साबुत लकड़ी ही तोड़ डाली थी."

मैं कौतूहल के साथ पूछती, "तुम्हारी ससुराल में अब कौन-कौन हैं?"

क्षमा हंसकर बोलती, "क्या ससुराल, क्या मायका, इस खमा ग्वालिन का कहीं कोई नहीं दीदी, कहीं कोई नहीं. यह अभागिन सारे कुल को खाये बैठी है. . ."

वह दूध की कलसी लेकर जाने के लिए कदम बढ़ाती, मगर मेरे प्रश्न पर उसे फिर ठिठककर खड़ा होना पड़ता. मैं कहती, "क्यों, तुम्हारा मोहन तो है. वह तुम्हारा भतीजा...?"

वह गर्दन घुमाकर जरा-सा मुस्कराकर उत्तर देती, "पराये धन की रखवाली करती फिर रही हूं दीदी."

सोनामुखी शहर में क्षमा ग्वालिन को न पहचानने वाले लोग कम ही हैं. उसकी उम्र हो चली है. पचास-पचपन से कम नहीं. सिर के सारे बाल पक गये हैं. मगर आश्चर्य, शरीर की गठन में जरा-सा भी दोष नहीं आया. अपने झकझक करते सफेद दांत निकाले वह तरुणियों की तरह हंसती है. हरिणी की तरह चलती है, खंजन की तरह देखती है. उसकी बातों से पता चलता है कि इस शहर के अंतःपुरों में उसकी असीम प्रतिपत्ति है. डोम पाड़ा से बाबू पाड़ा तक, शादी वाले घर से जच्चा तक, क्षमा समान अभ्यस्त अनुभव के साथ आती-जाती है. सभी की हांडी की खबर रखती है. फिर आपद-विपद सुख-दुख में अपने दोनों हाथों की सेवा लेकर सभी के पास जा खड़ी होती है, उन्हें परम आत्मीय मानकर. निंदा किसी की नहीं करती. किसी से कोई शिकायत नहीं, यहां तक कि भाग्य से भी नहीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यतिक्रम देखा है तो एक मोहन के मामले में. मोहन के मामले में क्षमा का रूप ही दूसरा है. मोहन को लेकर उसके शिकवे-शिकायतों का अंत नहीं.

मैंने मोहन को भी देखा है.

उम्र यही होगी कोई अठारह-उन्नीस साल. शरीर का रंग कसौटी-जैसा काला, मगर चेहरा बड़ा सुंदर. स्वस्थ बलिष्ठ देह, चौड़ा माथा, बड़ी-बड़ी आंखों की उज्ज्वल दृष्टि में बुद्धि की स्पष्ट छाप.

सारे दिन डोमपाड़ा के दोस्तों के साथ मटरगश्ती करता घूमता है. क्षमा जानती है, इस शहर में जितने भी बिना पारिश्रमिक वाले परिश्रम-कार्य हैं, उन सभी के लिए सभी को मोहन की जरूरत पड़ती है. अपने घर के जरा-से काम में तो उसे आलस आता है, मगर भरी दुपहरी वर्षा-तूफान में लावारिस लाश को जलाने के लिए श्मशान दौड़ने की बात हो तो आलस जाने कहां भाग जाता है.

मोहन आज इस इलाके का विख्यात वंशीवादक माना जाता है. मेले में, जात्रादल में, गायन की महफिल में बांसुरी बजाकर श्रोताओं को आनंद देने के लिए प्रायः ही उसकी पुकार पड़ती है. उस बांसुरी के पीछे मोहन कुछ न कर पाया. न लिखाई-पढ़ाई हुई, न हुआ घर-संसार.

सोलह साल की उम्र में मोहन का विवाह करने के लिए क्षमा ने एक बार उठा-पटक की थी. इन लोगों के यहां लड़के की शादी इसी उम्र में होती है, अधिक समय तक कुंआरा रहना निंदा की बात मानी जाती है. मगर मोहन तो सुनते ही टेढ़ा मुंह कर क्षमा को धमकाने लगा, "अच्छा नहीं होगा बुआ, कहे देता हूं. शादी की इतनी ही इच्छा है तो तू कर ले. मुझे परेशान मत कर."

क्षमा ने परवाह नहीं की. सोलह साल का लड़का : उसकी क्या इच्छा-अनिच्छा. पास के गांव के मुखिया की छोटी लड़की क्षमा को बड़ी पसंद थी. मोहन के साथ खूब मेल खायेगी. बातचीत भी पक्की कर आयी थी. मगर मोहन तो किसी और मिट्टी का बना था. बुआ को समझा-बुझा न सका तो पक्की रस्म से एक दिन पहले अपने कुछेक दोस्तों के साथ जाकर भावी ससुर को अच्छी तरह धमका आया. भावी जमाई की वह रुद्र मूर्त्ति देखकर बूढ़ा मुखिया निश्चित ही घबड़ा गया होगा. पक्की रस्म वाले दिन उसने पात्र को देखा अवश्य, मगर मोहन को नहीं, दूसरे गांव के एक अधबूढ़े को. ऐसी सुंदर कच्ची उम्र वाली लड़की की वहीं शादी पक्की हो गयी.

सारी बात सुनकर क्षमा स्तंभित, स्तब्ध. मोहन से एक बात भी न कह सकी.

मगर मुखिया की लड़की के शादीवाले दिन सिर से अंगोछा बांध यह अभागा जब हंसता-खिलखिलाता उसके पास आकर बोला, "चल बुआ, मुखिया बाबा की लड़की की शादी में लड्डू-पूड़ी खा आयें," तो उस दिन क्षमा अपने को रोक न पायी. जो मुंह में आया कहकर, गाली-गलौज कर मोहन को घर से भगा दिया था.

बुआ की ताड़ना खाकर मोहन दो दिन जाने कहां

"बाउल बैकुंठ दास जब जहां से जाता है, वहां की स्मृति धो जाता है. उस रास्ते फिर कभी नहीं लौटता . . . मगर पांच वर्ष बाद एक रात के लिए उसे सोनामुखी गांव फिर आना पड़ा." और आकर छोड़ी उसने एक कहानी जो उन्नीस साल बाद एक अज्ञात अंत तक पहुंच पायी. क्या था वह अंत ?

जाकर रहा. इन दो दिनों में क्षमा की हालत खराब. रो-रोकर, चेहरा सुजाकर, भूखी रहकर पागल की तरह चारों ओर मोहन को खोजती फिरी.

तीसरे दिन सुबह घर लौटकर हंसते-हंसते बोला, "बस, हो गया? छोड़कर भी नहीं रह सकती, फिर गाली-गलौज भी करेगी. और बकेगी किसी दिन?"

अपने उस उद्वेग, उत्कंठा का जरा भी चिह्न मोहन के चेहरे पर न देखकर क्षमा ने उससे पूछा, "कहां था दो दिन?"

"बाबा की लड़की की शादी में मंडप बनाने गया था. वे लोग ही बुलाकर ले गये. मुखिया-बाबा ने आज भी रुकने के लिए कहा था, मगर भोला जाने कहां से खबर लेकर आया, बोला—घर जा मोहन, तेरी बुआ बुरी तरह रो-धो रही है. इसलिए चला आया. . ."

क्षमा और नहीं सुनना चाहती थी, चुपचाप उठकर चली गयी. वह उसी दिन समझ गयी कि यह लड़का उसके कहने में नहीं.

शाम के बाद जब चारों ओर स्तब्धता छा जाती है तो वह अपने बरामदे में बैठा बांसुरी बजाता है. न थकान, न विराम. काफी रात तक मोहन वंशी बजाता रहता है. बहुत-से कहते हैं कि उसकी वंशी आंखों में पानी खींच लाती है, मन को उदास कर देती है. वह अच्छी तरह जानती है कि यह मोहन का वंशी-वादन नहीं, यह उसके खून के नशे की झंकार है. वंशी तो निमित्त मात्र है. कोई भी वाद्य हाथ में लेता, वही उदास स्वर निकलता. गृहत्यागी विरक्त बाउल का यह लड़का दूसरा स्वर जानता नहीं, बजाता नहीं.

एक दिन सब भूलकर क्षमा इसी स्वर को प्रेम कर बैठी थी. प्रेम कर बैठी थी स्वरवाले आदमी को भी. वह आदमी कहीं गृहस्थी नहीं बसाता. कहीं बंधन में नहीं आता. बस रास्ता चलने में ही उसे आनंद आता है. इकतारे के उदास स्वर में उसके जीवन का छंद बंधा हुआ है—यह जानकर भी क्षमा उसे प्रेम कर बैठी थी. वह आज की बात नहीं.

उस वर्ष गांव के मेले में बाउलों के दल में एक नया चेहरा देखने में आया था. पहले दिन की महफिल में ही उसने गाकर, नाचकर सबको मुग्ध कर दिया.

पतला-पतला तरुण चेहरा, गौरवर्ण में लावण्य की झलक, पैनी नाक, बड़ी-बड़ी आंखें. माथे पर, नाक पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वैष्णवों-जैसा) लंबा तिलक. सिर पर चूड़ा-बंधे बाल. शरीर पर गेरुआ रंग का लंबा चोगा. हाथ में इकतारा. पैरों में घुंघरू.

क्षमा उसके उस पागल कर देने वाले गीत को सुनकर पागल-सी हो गयी थी. गाती वह भी थी. उन लोगों का गायन भी खूब मन लगाकर सुनती ताकि स्वर का कहीं भी कोई अंश निकल न जाये. मगर यह गीत, यह आवाज तो गोया बिल्कुल ही अलग थी. क्षमा ने ऐसा गीत पहले कभी नहीं सुना. बाउलों की उस गायन-महफिल से रात खत्म होते-होते घर लौटते ही उसने साऊ के लड़के उमेश को बुलवाया था.

दस-ग्यारह वर्ष का लड़का विशेष कुछ नहीं समझा, बस बोला, "तुम गाना सुनोगी?"

"अरे हां, एक गीत लिख लूंगी. लिवाकर ला सकेगा उसे? यदि ले आया तो तुझे मेले में गुब्बारा और बांसुरी खरीदने के लिए पैसे दूंगी. आज तीसरे पहर लिवा लाना."

उमेश भी उस्ताद लड़का. उस गायक को लाया पकड़-कर. और फौरन ही पैसे लेकर मेले में दौड़ गया. वह गायक बेचारा क्षमा को देखकर अवाक् हो गया, वहां अकेले कैसी एक बेचैनी-सी अनुभव करने लगा. बोला, "तुमने मुझे बुलाया है? मगर वह लड़का तो कह रहा था. . .जाने कौन बड़ा अच्छा गाता है, मेरा गीत लिखेगा. तो क्या तुम्हीं. . ?"

गायक बैकुंठ दास के विस्मय की सीमा न रही. पच्चीस वर्ष की सुंदरी युवती, परिहास-रसिकता से भरी, छलकती क्षमा ने नहीं— उसे तो जिस बात ने आकर्षित किया, वह था क्षमा का मधुर कंठस्वर. गायन-दीवाने को छोड़ गीत को और कौन खोजता फिरेगा?

मगर शुरू में बैकुंठ दास ने विश्वास नहीं किया. सिर हिलाकर बोला, "मैं जिस-तिस को नहीं सिखाता, गुरु ने मना कर रखा है. पहले सुनूं, तुम कैसा गाती हो."

उसके बेलाग प्रस्ताव पर कुंठित होकर भी अंत में क्षमा ने मधुर स्वर में उसे एक गीत सुना दिया. सुनकर बैकुंठ दास मुग्ध हो गया. बोला, "अरे बस, यह तो पक्के गवइये का गला है. तुम्हें मैं क्या सिखाऊंगा. अच्छा तो यह हो कि तुमने जो गीत गाया, वह मुझे सिखा दो, आज की महफिल में गाऊंगा."

बात ही बात में उस दिन क्षमा ने मालूम कर लिया था कि अपना कहने को बैकुंठ दास का इस त्रिलोकी में कोई नहीं. वह जन्म से ही वैरागी संसार-बंधनहीन है. बचपन में एक मुसलमान संगीत-साधक के यहां रहा है, बड़ा हुआ है. उसका वह फकीर गुरु कुछेक वर्ष हुए चल बसा. बस तभी से बैकुंठ दास घुमक्कड़ है. एक जगह अधिक दिन टिकता नहीं, अधिक दिन किसी के साथ रहता नहीं. देश-देशांतर में नये-नये चेहरों, नये-नये परिवेशों को देखता घूमता है. उसे इसी में आनंद आता है. तीनेक साल पहले उसका गीत सुनकर गुरु विष्णुदास ने बाउल धर्म की दीक्षा ली थी. बैकुंठ दास नाम भी उनका दिया हुआ है. अपनी लड़की भी देना चाहते थे उसे, वह डरकर रातों रात अखाड़ा छोड़कर भाग गया. वे गुरु भी अब नहीं रहे, कोई सालभर पहले चल बसे.

बैकुंठ दास ने क्षमा का कोई परिचय न जानना चाहा. बस इतना ही कहा था, "लड़कियों को देखकर मुझे डर लगता है, मगर तुम बड़ी अच्छी लगीं. तुम बहुत अच्छी हो. तुम्हारा गीत कभी नहीं भूलूंगा."

क्षमा प्रशंसा से पिघलने वाली युवती नहीं थी. कपड़े में मुंह ढककर हंसकर बोली, "क्यों रसिक, लड़कियों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा जो उन्हें देखकर डरते हो?"

बैकुंठ दास हंसा नहीं. थोड़ी देर चुप रहकर मुंह दूसरी तरफ थोड़ा घुमाकर बोला, "जिस जगह लड़कियां रहती हैं, मैं वहां नहीं टिक सकता. वे जाने कैसी. . ." बस चुप हो गया. और कुछ न बोला.

उस दिन बाउल-गान की महफिल में बैकुंठ दास ने सचमुच ही क्षमा का गीत गाया था. गाकर महफिल को मस्त कर दिया था. क्षमा सोच नहीं पायी थी कि वह उसे इतना सम्मान देगा.

श्रोताओं ने उल्लास से झूमकर तालियां बजायी थीं. अगले दिन सुबह ही वह आकर हाजिर हुआ, "राई, गीत दो!" गीत और गीत. गीतों का दीवाना युवक, एकदम स्वर-पागल. बेसुरी कोई बात नहीं सुनना चाहता. जिस बात में संगीत नहीं, उसकी तरफ कान ही नहीं देता.

दो दिन की बातचीत में ही क्षमा ने उसे पहचान लिया

आसपास बिखरी कहानियां

सिर्फ अपनों के लिए

▣ किरण अरोड़ा

रात के कोई दस-सवा दस बजे का समय था. पति-पत्नी अपने-अपने बिस्तरों में घुसे अपनी-अपनी पसंद की पत्रिकाएं पढ़ रहे थे. हल्की-हल्की ठंड शुरू हो चुकी थी, खिड़कियां वगैरह भी बंद थीं इसीलिए.

तभी अचानक बाहर से एक लड़की की हल्की सी चीख की आवाज आयी 'बचाओऽ ऽ ऽ.' फिर ऐसा लगा, किसी ने दोबारा 'बचाओ' कहने का प्रयास किया लेकिन उसका मुंह दबा दिया गया. पति तुरंत बिस्तर छोड़कर जल्दी से दरवाजे की ओर बढ़ा.

"कहां जा रहे हैं आप?" पत्नी ने पूछा.

"आवाज नहीं सुनी तुमने. बाहर शायद कोई खतरे में है. देखूं तो सही क्या हुआ, कौन है." पति यह कहते-कहते दरवाजे तक पहुंच चुका था और उसके हाथ चिटकनी की ओर बढ़ ही रहे थे कि "रुक जाइए." पत्नी ने फिर टोका.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या हुआ अब?" पति ने पूछा.

"इस तरह आपका बाहर जाना मुझे ठीक नहीं लग रहा. पता नहीं कौन लोग हैं, कितने हैं, कैसे हैं? आप अकेले हैं. वे खतरनाक किस्म के भी हो सकते हैं. आप मत ही जाइए. अगर आपके साथ कुछ हो गया तो मेरा और मुन्ने का क्या होगा?" पत्नी ने काफी दूर की सोचते हुए इतने सारे प्रश्न सामने रख दिये.

पत्नी के ये तर्क सुनकर पति के कदम ठिठक गये और वह जिस जोश से उठा था वह भी अब काफी हद तक काफूर हो चुका था.

अब वह पशोपेश में था. उसे पत्नी की सलाह ठीक लगने लगी.

अचानक, उसके सोचने का नजरिया भी बदल गया और अब उसे लगा आसपास और भी लोग रहते हैं. औरों ने भी तो यह आवाज सुनी होगी. वे भी तो उस लड़की की मदद के लिए आ सकते थे. अकेले उसने ही थोड़ी मानवता का ठेका ले रखा है. और अब उसके कदम बिस्तर की ओर वापस मुड़ चुके थे.

दो दिन बाद सुबह अखबार में उसने पढ़ा कि उसी के मुहल्ले की एक लड़की का कुछ बदमाशों ने अपहरण कर लिया था जिसने अपनी बेइज्जती की ग्लानि में नदी में कूदकर आत्महत्या कर ली. उसे लगा, वह शायद उस लड़की को बचा सकता था, लेकिन सिर्फ अपनों के लिए नहीं बचा सका. □

था. फिर भी बोली, उसके जाने से पहले विनती करके ही बोली, "जब तुम्हरा कोई कहीं नहीं, रसिक, तो हमारे गांव में ही रह जाओ. यहीं शादी-वादी कर गिरस्थी बसाओ."

"तुमने भी तो विवाह कर घर बसाया था, राई! फिर आज तुम इस तरह अकेली क्यों हो?" हंसकर ही उसने प्रश्न यह किया.

क्षमा उत्तर नहीं दे पायी. बैकुंठ दास चला गया.

बाउल बैकुंठ दास जब जहां से आता है, वहां की स्मृति धो जाता है. उस रास्ते फिर कभी नहीं लौटता. गायन सुनकर जो लोग उसे प्रेम करने लगते हैं, दो दिन बाद वे भी गृहत्यागी बाउल के इकतारे का उदास स्वर भूल जाते हैं. मगर पांच वर्ष बाद, एक रात के लिए, उसे सोनामुखी गांव फिर आना पड़ा. क्षमा के पास आया. चार महीने का लड़का उसे दे गया. कह गया कि लड़का कुछ बड़ा हो जाये तो एक दिन आकर ले जायेगा. तब तक लड़के को बड़ा करे क्षमा. क्षमा खुशी से झूम उठी थी, अवाक् भी कम नहीं हुई पूछ बैठी, "किसका लड़का है, रसिक? तुम्हारा?"

"हूं."

"लड़के की मां कहां है? उसे क्यों नहीं लाये?"

"मर गयी."

मोहन वही लड़का है. मगर बैकुंठ दास लौटकर नहीं आया. लड़के को एक बार देखने भी. मगर खून का आकर्षण जायेगा कहां? उन्नीस साल तक क्षमा बराबर प्रतीक्षा करती रही. वह जानती है, बाउल को लौटकर आना ही पड़ेगा. मोहन भी अपने पिता की प्रतीक्षा किये हुए है. जिसे आंखों से नहीं देखा सिर्फ क्षमा से जिसके बारे में सुना है, उस पिता को मोहन बहुत चाहता है.

बीच-बीच में काफी रात गये मोहन वंशी बजाना रोककर बुआ की गोद में सिर रखकर लेट जाता है. कहता है, बापू की कहानी सुनाओ, बुआ. कभी-कभी तो क्षमा के आंसू कोई बंधन नहीं मानते. मोहन अवाक् हो जाता है. "रोती क्यों है?" क्षमा झट् से आंखें पोंछकर कहती है, "रोती नहीं. रोऊंगी क्यों? क्यों रे मोहन, तू इतना बापू-बापू करता है, वह तो एक बार भी तेरी बात नहीं सोचता." मोहन सरल भाव से कहता है, "सोचेंगे कब? रोज कितने बड़े-बड़े गाने-बजाने की महफिलों में जाना पड़ता है, कितने लोगों को गाना सुनाना पड़ता है. मैं जब महफिल में बैठकर बांसुरी बजाता हूं, मुझे ही कुछ याद नहीं रहता, सब भूल जाता हूं."

"हुं. तभी बाप के ऊपर इतना दरद है. और मैंने जो तुझे इतना खिला-पहनाकर बड़ा किया, मेरी बात जरा भी नहीं सोचता, तू ऐसा नमकहराम है!"

मोहन संकुचित सा होकर बोला, "गाली क्यों दे रही है? क्या नमक-हरामी की, बता तो? तू नहीं होती तो जाने कब का मैं बापू की खोज में निकल पड़ता. तेरी बला सोचकर ही तो नहीं जा पाता. मैं गया नहीं कि रोने बैठ जायेगी."

क्षमा का अंतस धुक-धुक करने लगता है. सूखे गले से कहती है, "तुझे कहीं जाने की जरूरत नहीं. वही आयेगा."

"हां, आ गये! इसने साल हो गये, अभी तक नहीं आये, और कब आयेंगे, बापू!" उसकी आवाज में आक्षेप मिला होता है.

क्षमा दूसरी तरफ मुंह कर उतर देती है, "नहीं आया तो समझूंगी कि विधाता ने बाप-बेटे का झूठा ही संबंध बनाया है. मैं उसकी भले ही कुछ न होऊं, पर तू तो उसका लड़का है. तुझे वह कैसे भूलेगा?"

फिर मुंह फेरकर मोहन की उत्साह से चमकती आंखों की ओर देखकर कहती है, "तभी तो तुझसे कहती हूं, मोहन, ब्याह कर, गिरस्थ बन. तेरा बाप आकर देखकर कितना खुश होगा, सोचकर देख. मेरी भी कितनी साध है : तेरी बहू देखूंगी, लड़का देखूंगी. मगर यह सब तो तू सुनेगा नहीं, अपना भला समझेगा नहीं. बाप-बेटे की एक ही रीत."

इसी तरह सुख-दुख के बीच उन दोनों के दिन बीत रहे थे. इसी बीच एक छोटी-सी घटना घट गयी. उसका जिक्र किये बिना मेरी यह कहानी अधूरी रह जायेगी. मुझे सबसे पहले क्षमा को ही बतानी चाहिए थी, मगर मैं किसी तरह भी बता न सकी.

उस दिन तीसरे पहर मैं अपने स्कूल के सेक्रेटरी की अस्वस्थ मां को देखकर घर लौट रही थी. रास्ते से ही देखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कुछ चीज़ों से हमारा नाता सौ साल बाद भी छूट नहीं पाता

सौ वर्ष पूर्व एक परंपरा का उदय हुआ. उसका नाम था सनलाइट. जो नानी से दोहती रानी तक, घर-घर, दुनिया के दूर-सुदूर मुल्कों में फैलती ही चली गई. शुद्धता और कोमलता से भरी सनलाइट की इस परंपरा को नित बदलता हुआ युग भी बदल नहीं पाया और न कभी बदल पाएगा. क्योंकि शुद्धता की इस परंपरा को शताब्दियों तक बरकरार रखने के लिए हम कुछ भी कर गुज़रने को तैयार हैं.

सनलाइट साबुन 100 वर्षों से चली आ रही विश्वसनीय परंपरा

LINTAS SUN 11 2015 HI

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आया कि मेरे क्वार्टर के बाहरी बरामदे में एक बूढ़ा आदमी चुपचाप बैठा हुआ है. मेरे लिए पूर्णतः अपरिचित. बड़ा रोबीला चेहरा, सहज ही दृष्टि आकर्षित करता था. सीने तक सफेद दाढ़ी, कंधों तक सफेद बाल. शरीर पर एक मैली अचकन और धोती. शीर्ण-रुग्ण चेहरा, ज्योतिहीन आंखें. हाथ में इकतारा, कंधे पर लटकता थेगली लगा झोला. स्टेशन से चलकर शहर में प्रवेश करते ही मेरा स्कूल-क्वार्टर है. उसे देखकर लगा कि वह अभी-अभी रेल से उतरकर आया है. मगर मेरे यहां क्यों? क्या चाहता है?

चप्पलों की आवाज सुनकर उसने मुंह फेरकर इस तरफ देखा. फिर खड़ा होकर जरा-सा झुककर मेरे प्रति अभिवादन व्यक्त किया—बड़े सुंदर तरीके से. मैं अवाक् होकर उसी को देख रही थी. बोली, "क्या चाहिए तुम्हें?"

वह थोड़ा इधर-उधर कर विनीत भाव से बोला, "सोनामुखी गांव किधर है, बहनजी, किस रास्ते जाऊं?"

सोनामुखी गांव! शहर सोनामुखी में आकर गांव के बारे में पूछ रहा है, यह आदमी कौन है! मैंने विस्मित भाव से ही पूछा, "कहां जाओगे तुम? किसे खोज रहे हो? यही सोनामुखी शहर है."

वह थोड़ा-थोड़ा हांफ रहा था. लगा कि वह अस्वस्थ है. रुक-रुककर बोला, "क्षमा—क्षमा ग्वालिन के घर जाऊंगा. उसका घर जरा बता दें. यहां से कितनी दूर होगा?"

"थोड़ा दूर तो है ही, शहर के दूसरी छोर पर है. तुम बाउल हो?" जाने कैसे अकस्मात् ही यह बात मेरे मुंह से निकल गयी. उस बूढ़े ने अपनी क्षीण दृष्टि डालकर जरा-सा हंसकर कहा "घर कितनी दूर है, बहन जी, किधर से जाऊं? दिन-दिन में पहुंच तो जाऊंगा? रात में आंखों से दिखाई नहीं देता. दो दिन से ज्वर भी हो रहा है. बड़ा थका हूं."

नहीं, बाउल बैकुंठ दास को पहचानने में मुझसे भूल नहीं हुई. सोनामुखी गांव की क्षमा ग्वालिन के घर का ठिकाना आज बाउल के अलावा और कौन आकर पूछेगा?

पर अगले दिन यथा समय क्षमा आकर मेरी नींद तोड़कर दूध दे गयी. उसके चले जाने के बाद मुझे याद आयी कल की वह घटना

करीब दस बजे स्कूल पहुंचने पर पता चला कि सेक्रेटरी की मां चल बसीं, आज स्कूल की छुट्टी है. प्रधान अध्यापिका ने अध्यापिकाओं से शवयात्रा में सम्मिलित होने का अनुरोध किया है. सब मिलकर गये सेक्रेटरी के घर. वहां से श्मशान.

उस वक्त करीब तीन बजे थे. चिता प्रज्ज्वलित करने की तैयारी हो रही है. इसी वक्त शव-यात्रियों का एक और दल 'हरिबोल' ध्वनि से चारों दिशाएं मुखरित करता वहां आकर पहुंचा. गौर किया कि मोहन और उसके मोहल्ले के दोस्त एक बांस की चारपाई पर एक लाश लेकर आये हैं. उन लोगों ने सेक्रेटरी की मां की चिता के पास ही धर-पकड़कर उस चारपाई को उतारकर रखा. तुरंत ही जाने कौन सभागत भद्रमंडली में से धमक उठा "यहां नहीं, उधर जा. ये सब...."

उन लोगों ने खाट फिर उठायी. मैं कुछ फ़ासले पर खड़ी यह सब देख रही थी.

मेरी बगल से वे लोग जब चले जा रहे थे, मैं पूछे बिना न रह सकी, "किसकी लाश है, मोहन?"

मोहन खुलकर हंसा. बोला, "क्या पता दीदी किसकी है. दत्ताओं के तालाब के किनारे पड़ी थी. इस शहर का कोई नहीं, वरना पहचान लेता."

कुछ दूर जाकर उन्होंने फिर खाट उतारी. एक बड़े सरेस के नीचे छायादार जगह में रखी.

मैं खड़ी-खड़ी उनकी तत्परता गौर कर रही थी—अपने इधर के परिवेश की बात भूलकर. मगर चिता तैयार करने के बाद उन्होंने चारपाई की डोर-रस्सी खोलकर, आवरण हटाकर धरपकड़कर जब उस लाश को चिता पर रखा तो मैं चौंक गयी.

बाउल बैकुंठ दास!

इसका मतलब, वह क्षमा ग्वालिन के घर तक नहीं पहुंच पाया. मोहन लावारिश लाश की तरह उसे श्मशान ले आया. अपने अनजाने में ही मैं कुछेक कदम उन लोगों की तरफ बढ़ गयी. फौरन ही ठिठककर खड़ी हो गयी.

उस लाश को लेकर मोहन और उसके दोस्त रसिकता कर रहे थे. उसकी दाढ़ी-मूंछ से हाथ लगा-लगाकर मोहन कह रहा था "आहा, बूढ़े के दाढ़ी-मूंछ भी खासा थी!"

भोला ने कहा, "दाढ़ी काट ले मोहन दा?"

मोहन अपने अट्टहास से दिगंत कंपित करता बोला, "काट ले न! बाद में मजा देखना. रात को इस दाढ़ी की खोज में बुड्ढा भूत बनकर तेरे घर आयेगा." कहकर वह कौतुक के साथ आंखें मटकाकर बोल पड़ा, "ठहर, एक मजा दिखाता हूं. इस बेटे के मुंह में जरा-सी आग भर दूं."

कानू बड़े विस्मय के साथ बोला, "अरे-रे देखो न क्या करता है! न जाने किसकी लाश है, तुम मुखाग्नि दे रहे हो. बुआ को पता चल गया तो गोबर खिलाकर फिर घर में घुसने देगी."

मोहन ने उसकी बात पर कोई ध्यान देकर बड़े कायदे के साथ जरा-से फूस में आग लगायी. फिर लाश के मुंह से वह आग स्पर्श करा हंसते-हंसते बोला, "जा बच्चू, सरग (स्वर्ग) के रथ पर चढ़कर बैकुंठ चला जा."

एकाएक कंधे पर किसी के हाथ का स्पर्श पाकर मैंने चौंककर मुंह फेरा तो पकड़ में आ गयी. कब आंखों में आंसू भर आये थे, पता ही न चला. मेरे चौंकते ही टप् टप कर गालों पर वह निकले.

प्रधानाध्यापिका एक लंबी सांस छोड़कर बोलीं, "बड़ी अच्छी थीं भद्रमहिला! लड़का-बहू, पोता-पोती छोड़कर स्वर्ग सिधारीं, यह बड़ी तसल्ली की बात है."

मैंने मुंह घुमाकर एक बार फिर देखा—धू धू कर बाउल की चिता जल उठी है. ☐

● (अनुवाद: ब्रजगोपाल दास अग्रवाल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

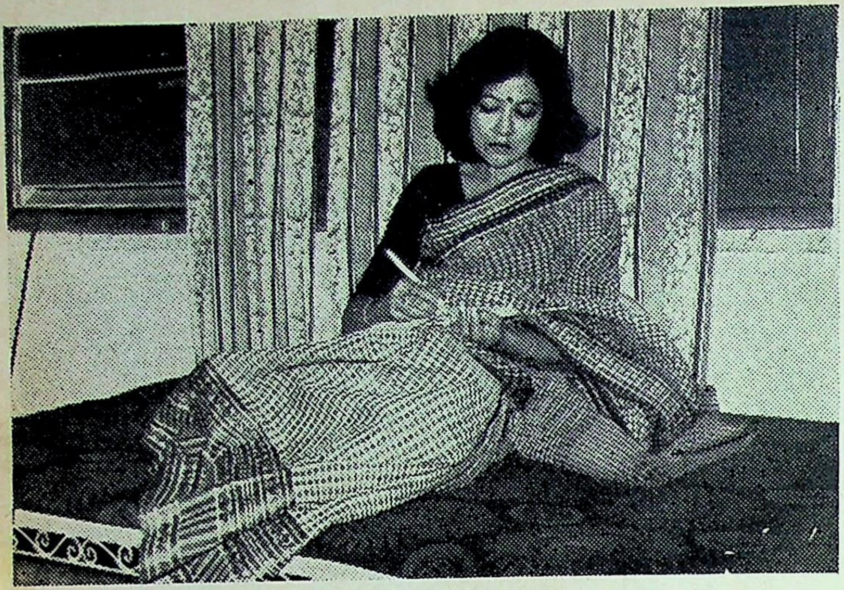

साक्षात्कार

मृदुला गर्ग से दिनेश द्विवेदी की अंतरंग बातचीत

मेरी दिलचस्पी का विषय यात्रा है पड़ाव नहीं :

▣ हिंदी कथा-साहित्य में मृदुला गर्ग एक चर्चित नाम है. 'उसके हिस्से की धूप', 'अनित्य', 'चित्तकोबरा' और हाल ही में प्रकाशित 'मैं और मैं' सरीखे उपन्यासों के अतिरिक्त उनकी कहानियां अपने-आप में विशिष्ट हैं. हां, यह बहुत कम लोग जानते हैं कि वह नाट्य जगत से भी गहरे में जुड़ी रही हैं...प्रस्तुत है, युवा लेखक द्वारा उनसे किया गया एक अंतरंग साक्षात्कार—

—मृदुलाजी, आज आपके लेखन की इमारत एक बुलंद नींव पर खड़ी हुई है. . .उस नींव की तह में कहीं 'कुछ' इस तरह से छिपा होगा जिसने इमारत की बुलंदी को इस कद-काठी तक पहुंचाया. . .उस 'कुछ' के विषय में बतायेंगी आप. . .?

अभी तो नींव भर रखी गयी है लेकिन बुलंदी के लिए प्रयास अवश्य है. जो तह में है, शायद उस परंपरागत भारतीय चिंतन को, जो अंध आस्था और संतोष को सर्वोपरि मानता है, रास न आये. वह है रोष और शंका. किसी भी मूल्य या स्थिति को मैं केवल इसलिए स्वीकार नहीं कर पाती क्योंकि वह है और सर्वमान्य है, होती आयी है और सुरक्षा प्रदान करती है. अपने चारों तरफ घटते अन्याय को देखकर मैं शांत, स्थित नहीं रह पाती. अनास्था और असंतोष से पनपा रोष मेरे भीतर उफनने लगता है. अर्थशास्त्र के मेरे अध्ययन ने इसे और तीव्र किया है. व्यवस्था के लिए रोष और यथास्थिति को लेकर शंका, इन्हीं की नींव पर मेरा लेखन खड़ा है. लगता है हर पल अपने सम्मुख खड़ी हूं और पूछ रही हूं. अभी एक शंका और है, उसका समाधान? लिखने के बजाय मैं आंदोलन क्यों नहीं चलाती, लेखक क्यों हूं, नेता-क्रांतिकारी क्यों नहीं, इस शंका का समाधान कौन करेगा? शायद समय.

—कहते हैं उम्र का एक थरथराता-सा वासंती हिस्सा होता है. . .उस दौर में संवेदनशील व्यक्ति, जो कि कुछ लिखता है, अक्सर कविता लिखता है. . .क्या इस तरह का पड़ाव भी आया है?

उम्र का वासंती हिस्सा तो अर्थशास्त्र पढ़ते-पढ़ते बीता. कविताएं कुछ लिखी जरूर पर तीस और चालीस पार करने पर. वैसे भी भारत के मैदानों में वसंत और पतझड़ एक साथ आते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—कलम का साथ लिखने की छटपटाहट से हुआ या किसी शौक. . .

दिल्ली स्कूल आफ इकोनोमिक्स में स्कॉलरशिप मिलता रहा. पढ़ाती भी बुरा नहीं थी. पर वह तो एक बर्दाश्त बाहर छटपटाहट ही थी. जिसने लेखन की तरफ खींच दिया.

—उसके हिस्से की धूप बेशक एक सशक्त कृति है. . .उसकी नायिका मनीषी बौद्धिक और संवेदनशील नारी है. . .मानसिक ताल-मेल न बैठा पाने की स्थिति में अपने पति को छोड़ अपने साथी प्रोफेसर से विवाह कर लेती है. . .नारी का यह बेबाक विद्रोह वास्तव में एक सशक्त और 'स्व!' की तलाश का बौद्धिक विद्रोह है. . .मगर दोबारा पति के मिलने पर पुनः शारीरिक समर्पण. . .रिवेल. . . .का यह कमजोर पहलू . . .कुछ समझ में नहीं आया?

शारिरिक मिलन को 'समर्पण' की संज्ञा देते रहेंगे तो यह पहलू हमेशा कमजोर लगेगा. सच तो यह है कि 'उसके हिस्से की धूप' की मनीक्षा कमजोर तब थी जब उसने पति को छोड़ा. जो व्यक्ति विद्रोह करना तो चाहे पर उसकी पूरी कीमत चुकाने से डरे, वही अपने व्यक्तित्व की कमजोरी से साक्षात्कार करने के बजाय स्थिति (यहां पति) में कमजोरी ढूंढ़कर 'सुख' प्राप्त करना चाहता है. मनीषा भी ऐसी ही मनःस्थिति में किसी और पुरुष के सहारे 'तुष्टि की खोज में जाती है. धीरे-धीरे उसने स्वयं से साक्षात्कार करने का साहस जुटाया. पहले पति से दुबारा भेंट होने तक, वह इस दिशा में कदम उठा चुकी थी. यह उससे मिलने के बाद भी हुआ कि उसने निर्मम बनकर अपने से साक्षात्कार किया और समझा कि स्वतंत्र अस्तित्व वाले व्यक्ति को (चाहे वह स्त्री हो या अथवा पुरुष) 'तुष्टि' अपने भीतर खोजनी होती है, अमरबेल की तरह किसी वृक्ष का सहारा लेकर नहीं. मनीषा के बौद्धिक विद्रोह की परिणति के साथ ही उपन्यास का अंत होता है, जब वह पति (पुरुष) से संवाद के मोह को त्याग कर, खुद से संवाद को महत्व देती है, उससे पहले की कथा विद्रोह की कथा नहीं, उसकी जमीन तैयार करती, अस्तित्व की तलाश में भटकती दुविधाग्रस्त यात्रा है.

● जहां तक भारतीय नारी की मूर्ति का सवाल है मुझ तो आज तक अशरीरी लगी नहीं. . .

अचरज हो रहा है इस प्रश्न पर. क्या उपन्यास **'अनित्य'** की काजल बनर्जी, प्रभा, शुमा, संगीता, स्वर्णा को बिल्कुल ही भूल गये. और कहानी **'मेरा'** की मीता, **'डैफोडिल जल रहे हैं'** की जिना! उपन्यास **'मैं और मैं'** की नायिका माधवी? और भी अनेक कहानियों की नायिकाएं. कहां हैं इनके पास प्रेमी या पति? और अगर हैं तो जो 'तीसरा क्षितिज' या उससे भी आगे बढ़कर अनगिनत क्षितिज, इन्होंने जीने के लिए खोज लिये हैं, उनकी सीमा बिंदुओं को छू पाने में भी अक्षम. अगर 'उसके हिस्से की धूप' और 'चित्तकोबरा' उपन्यासों की नायिकाओं को भी लें, जिनकी तरफ शायद आपका इशारा है, तब भी यह आरोप सही नहीं है. दोनों ही उपन्यासों में, नायिका, पति-प्रेमी के द्वंद्व से ग्रस्त जरूर होती है पर परिणति उसकी 'तीसरे क्षितिज' को चुनकर ही होती है, प्रेमी या पति पाकर नहीं.

—प्रेम की अभिव्यक्ति का माध्यम शरीर होता है—यह अपने-आप में एक स्पष्ट बात है—'चित्तकोबरा' की नायिका मनु पति को मानसिक-असंगता के कारण हार्दिक प्रेम नहीं दे पाती—यहां तक तो ठीक है—मगर अपने प्रेमी के प्रणय-क्षणों के दौरान संपूर्ण-समर्पण क्यों नहीं करती. . . इसके पीछे कहीं भारतीय नारी की मूर्तिभंग होने का तो डर नहीं था?

'चित्तकोबरा' में प्रेमी से, प्रणय के क्षणों के दौरान मनु का संपूर्ण शारिरिक मिलन '(समर्पण नहीं) पूरी तरह चित्रित है (पति के साथ के शारिरिक संबंध से कहीं अधिक प्राणवान रूप में) क्यों न दोबारा पढ़कर देख लें. जहां तक भारतीय नारी की मूर्ति का सवाल है, मुझे तो आज तक वह अशरीरी लगी नहीं. बल्कि साहित्य में और जीवन में भी, पश्चिम की नारी की तुलना में कहीं अधिक बेबाक ढंग से शरीर पर मुग्ध और शरीर से आतंकित है.

—आपके 'करेक्टर्स'—मनु, मनीषा, अविजित आदि विद्रोह करते तो जरूर हैं मगर क्या कारण है कि उनके मानसिक अंतर्द्वंद्व की जकड़न या असमंजस की स्थिति नहीं जाती?

कारण शोध का विषय हो सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● इरादा बनाकर नहीं लिखा कभी

है. संक्षिप्त उत्तर देना जरा कठिन है. मानसिक अंतर्द्वंद्व या असमंजस की स्थिति से पूरी तरह छुटकारा पाया हुआ पात्र मेरे लिए दिलचस्पी का विषय नहीं रहता. वैसे भी हमारा समाज जिस तरह की संक्रमण की स्थिति में है, उसमें इस तरह के मानसिक दुविधा से मुक्त पात्र योटोपियन ही हो सकते हैं. अधिकतर तो ऐसे लोग भाग्यश्री, यथास्थिति के पुजारी या बालबुद्धि के कारण सुखी जीव ही होते हैं. मुझे वे किसी भी स्तर पर मान्य नहीं लगते. मेरे लिए यूं भी दिलचस्पी का विषय यात्रा है, पड़ाव नहीं; तलाश है, मंजिल नहीं; जीवन है, मृत्यु नहीं. जहां पहुंचने के लिए निकले हैं वहां पहुंच गये तो फिर चलना किसलिए. यात्रा किये बगैर ही तीसरा क्षितिज मिल गया तो लिखने को क्या बचा?

—'अनित्य' उपन्यास के माध्यम से आपने आजादी की लड़ाई के कालखंड को बहुत ही सधे हुए तरीके से उठाया है. . मगर कुछ लोगों ने, जैसा कि आपने भी पढ़ा-सुना होगा—उसे आजादी के दौर का 'सैकेंड हैंड' चित्रण माना है. . इस पर आप. . .?

मैं नहीं समझती कि अश्वत्थामा के अलावा किसी को यह वरदान प्राप्त है कि वह हर युग का साक्षी हो. इतिहास की जानकारी 'सैकेंड हैंड' ही होती है. सवाल संवेदना का है. हमारा मानस उस युग के प्रति पूरी तरह संवेदनशील हो सकता है, जिसे हमने नहीं देखा. जहां तक 'अनित्य' का सवाल है, बचपन मैंने उसके पात्रों के साथ ही बिताया और उनकी गहरी छाप अब तक मेरे मानस पर है. इतिहास को हम संवेदना और अध्ययन के आधार पर ही दुबारा जी सकते हैं. अब भी जब मैं क्रांतिकारियों या स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने वालों के संस्मरण पढ़ती हूं (श्रद्धेय अज्ञेय जी तक के) तो खुशी होती है कि मेरे उपन्यासों के पात्रों की तरह ही जिये थे वे लोग. हां, जिन लोगों ने 'आंखों के सामने बन रहे इतिहास' में सक्रिय भाग नहीं लिया, आत्मग्रस्त रहे, उन्हें दूसरों की अंतरात्मा की संवेदना-मूलक पीड़ा सैकेंड हैंड जानकारी लग सकती है क्योंकि देखे हुए को अनदेखा कर जाने के कारण, उनका अपना ज्ञान-बोध भावात्मक लगाव के अभाव में सैकेंड-हैंड बन चुका है.

—'अनित्य' के माध्यम से आपने विगत राजनैतिक पहलू पर तो लिखा . . क्या वर्तमान राजनैतिक-संदर्भों पर भी कुछ लिखने का इरादा है?

इरादा बनाकर कभी लिखा नहीं, अनुभव से लिखती हूं, उसमें जो संदर्भ युक्तिसंगत होते हैं, खुद-ब-खुद आ जाते हैं.

—'चित्तकोबरा' की श्लीलता-अश्लीलता पर कहने और न कहने योग्य औरों द्वारा तो बहुत कहा गया. . . मैं चाहता हूं आप स्वयं कुछ कहें?

मैं समझती हूं कि साहित्य में श्लील-अश्लील महत्वपूर्ण मुद्दा है ही नहीं. यह बहस केवल गंभीर प्रश्नों से बचने के लिए उठाई जाती है. हिंदी आलोचना की यह पुरानी प्रवृत्ति रही है कि साहित्य को उसके मूल्य में ग्रहण न करके शब्द मूल्य तक सीमित कर लिया जाये और फिर श्लील-अश्लील के खांचों में फिट करने का प्रयास किया जाये. इस प्रवृत्ति के पहले शिकार जैनेंद्र हुए. उनके उपन्यास **'सुनीता'** के अंतिम दृश्य में सुनीता के निर्वसन होने पर काफी हंगामा मचा. आश्चर्य और दुख की बात यह थी कि विवाद का विषय बना केवल सुनीता का निर्वसन होना यानी दृश्य का शब्द मूल्य. विवाद का जो विषय असली होना चाहिए था, अछूता रह गया. यदि भारतीय स्त्री को लेखक से यह शिकायत होती कि उन्होंने अपने आदर्श को उपलब्ध करने के लिए स्त्री को स्त्री न रहने देकर आदर्श-प्राप्ति का साधन बनाया है तो खुशी की बात होती (शायद लेखक के लिए भी) तब विवाद का असली मुद्दा, लेखक को अपने पात्रों पर अपने आदर्श का आरोपण करना चाहिए या नहीं, सामने आ सकता था. इसी तरह **कृष्णा सोबती** पर भी अश्लीलता का आरोप आया, **'मित्रो मरजानी'** और **'सूरजमुखी अंधेरे के'** को लेकर. पर असली सवाल कि स्त्री में जिस आदिम वृत्ति को कृष्णा सोबती ने दिखलाया है, उसे बाकी की वृत्तियों से काट क्यों लिया गया है, पूछा नहीं गया. यानि विवाद कथ्य को लेकर नहीं हुआ, सड़ी-गली (सौंदर्य-बोध से इतर) मान्यताओं को लेकर होता रहा. इसी तरह **'चित्तकोबरा'** के एक दृश्य को लेकर बावेला मच गया, जिसमें मन और शरीर का द्वैत और संभोग में नायिका का सहभोगी न होना

● अभिरुचियां कई हैं...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखलाया गया था. मंतव्य था संपूर्ण प्रेम (जिसमें शरीर अभीष्ट नहीं होता पर संप्रेषण का माध्यम अवश्य होता है) और प्रेमहीन शारीरिकता के विरोध को दिखलाना. प्रश्न उठाया जा सकता था-कि क्या मन और शरीर में द्वैत है? क्या संपूर्ण प्रेम की अनुभूति आदिम प्रवृत्तियों का उदात्तीकरण करने में समर्थ है? पर हुआ यह कि केवल कुछ शब्द पकड़ लिये गये और उनके अर्थों तक पहुंचने की कोशिश तक नहीं की गयी.

—जब कोई रचना आपकी कलम की नोक से कागज के सीने पर उतरती है... उस वक्त आप किस तरह का माहौल पसंद करती हैं?

दिनेश भाई, माहौल चाहे मैं जैसा भी पसंद करूं, रहना तो उसी के बीच है जो मेरे चारों तरफ है. शोर ;पारिवारिक चिंताएं, परीक्षा देते या गलत वक्त बीमार पड़ते बच्चे, परिवार को खिलाने-पिलाने की मजबूरी कहिए या दायित्व, अतिथि, लगातार बजता फोन, घर में ही लगा पति का दफ्तर, दरवाजे पर जरूरी-गैर-जरूरी दस्तक, नाते-रिश्तेदारों की अनवरत समस्याएं वगैरह-वगैरह. यानी मैं पारिवारिक-सामाजिक जीव हूं और उससे उत्पन्न शोर-शराबे के बीच रहती हूं. भगोड़ेपन की प्रवृत्ति प्रकृति ने दी नहीं, इसलिए जम कर माहौल से हाथापाई करती हूं और लिखती हूं क्योंकि विकल्प है नहीं.

● पढ़ना भी साथ-साथ चलता है...

—आपका लेखिका होना घर-परिवार में क्या मायने रखता है ... मतलब लेखिका-मां-पत्नी के बीच कहीं कोई टकराहट तो...?

घर-परिवार में मेरा लेखिका होना वही मायने रखता है जो मेरा डॉक्टर-वकील-प्राध्यापिका होना रखता या मेरे पति का क्रमशः इंजीनियर, मैनेजर, व्यवसायी होना रखता है. यानी जहां तक बच्चों का सवाल है, उनके लिए तो मैं उनकी मां हूं, काम चाहे जो करती हूं. उसी तरह जैसे मेरे पति उनके पिता हैं, बाकी जो भी हों. हम पति-पत्नी एक दूसरे के काम में खामख्वाह टांग नहीं अड़ाते, हां एक-दूसरे की मसरूफियत और आदतों से समय-समय पर किसी भी पति-पत्नी की तरह कुढ़-चिढ़ भी लेते हैं. सच तो यह है कि जिंदगी का मजा ही टकराने में है और साथ रहने का मतलब ही टकराना है. हमारे यहां तो वैसे भी हर किसी को जो वह सोचता है कहने की छूट है और जो वह वाकई करना चाहता है करने की. ऐसे में बहस भी अवश्यंभावी है और टकराहट भी. सो टकराते रहते हैं और जिंदगी का आनंद लेते हैं. जो जिया नहीं, वह क्या खाक लिखेगा.

▣ "लिखे हुए प्रकाशन को लेकर कोई कटु-तिक्त अनुभव?

छोड़िये भी क्यों जायका खराब करते हैं.

▣ पहले आप नाट्य-जगत से भी काफी गहरे तक जुड़ी रही हैं.... इस बारे में अभिनय, मंचन या नाट्य-लेखन की कोई भावी-योजना?

अभिनय तो तीस की उम्र पर आकर जानबूझकर छोड़ा. सुबह लेखन करूं और शाम को अभिनय, मेरा घर-बार कौन देखेगा? नाट्य लेखन कभी-कभार कर लेती हूं पर इतना लिख लेने पर इस नतीजे पर पहुंची हूं कि मेरी मानसिक उथल-पुथल के लिए नाटक से अधिक उपयुक्त विधा उपन्यास है. उसमें एक फायदा यह भी रहता है कि अभिव्यक्ति की पूर्णता के लिए किसी और का सहारा नहीं लेना पड़ता.

● चीजें आकर ऐसे लेती हैं.

▣ लेखन की इस लंबी यात्रा के दौरान कुछ ऐसे सहमा देने वाले क्षण...

सहमा देने वाले क्षण जीवन में कई बार आये पर मेरा लेखन कभी सहमा नहीं. मैंने देखा है कि दोस्तों से ज्यादा मुझे लिखने के लिए प्रेरित दुश्मन करते हैं, इसलिए लोगों के वार उलटे पड़ जाया करते हैं.

▣ लेखन के अलावा कुछ अन्य अभिरुचियां भी तो होंगी!

अभिरुचियां कई हैं. मसलन अभिनय (जो अब छोड़ चुकी); जंगल-पहाड़-नदी से मिली लकड़ी को आकृतियां देना; नये प्रकार के व्यंजन बनाना; बहस करना; राह चलते जहां अन्याय दीखे लड़ पड़ना; और हां दुश्मन बनाना.

—हर सफल पुरुष लेखक के पीछे एक नारी होती है ... इसी तरह हर सफल-लेखिका के पीछे...?

लेखिकाओं के लिए यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि हर लेखिका के पीछे कई नहीं तो एक पुरुष अवश्य रहता है जिसके कारण नहीं, जिसके बावजूद वह लेखन करती है. मैं अपवाद नहीं हूं. □

छायाः पवन महेंद्र एवं एम. रफीक खान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल कहां जाओगी

पद्मा सचदेव

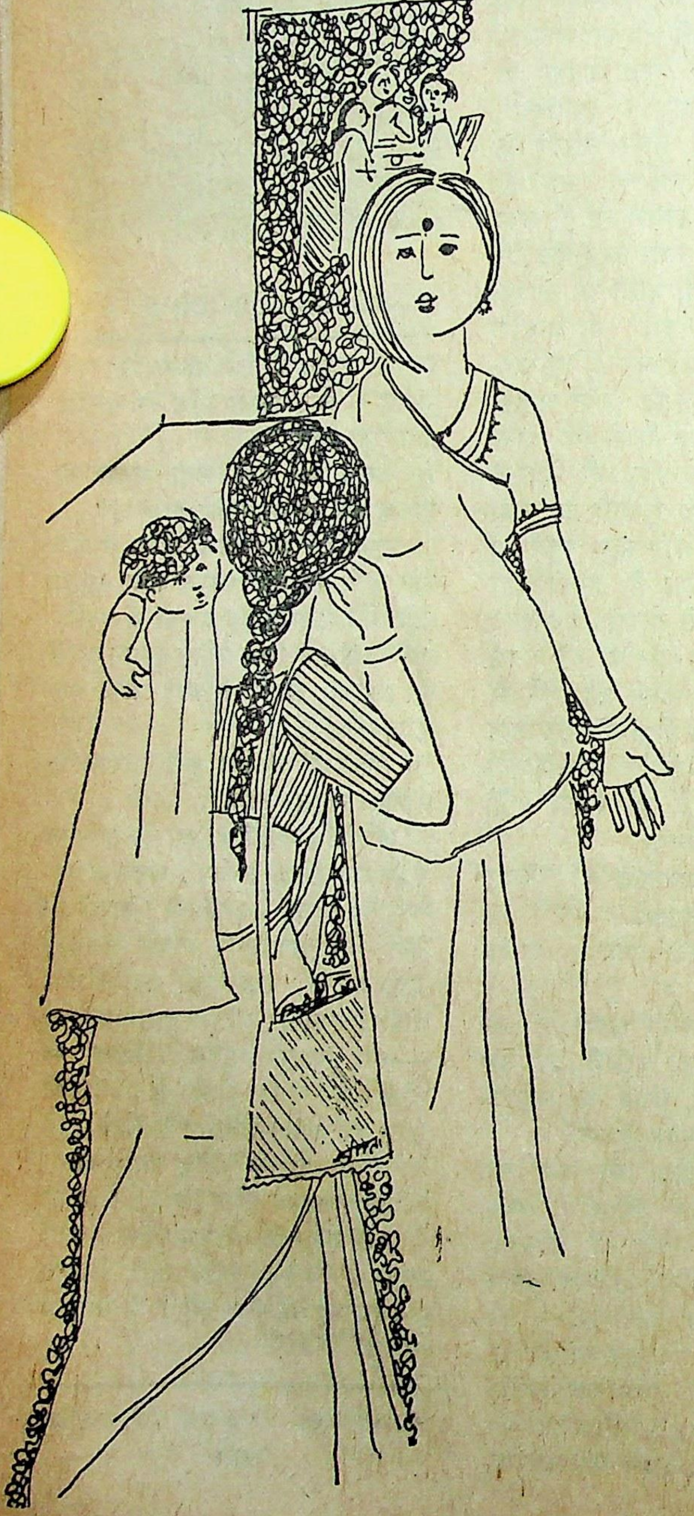

सुबह की पहली किरण की तरह वो मेरे आंगन में छन्न से उतरी थी. उतरते ही टूटकर बिखर गई थी. और उसके बिखरते ही सारे आंगन में पीली-सी चमकदार रोशनी कोने-कोने तक फैल गई थी. खिलखिलाकर जब वो सिमटती तो रोशनी का एक घना बिंदू आंगन के बीचोंबीच लरजने लगता और उसकी बेबाक हंसी से आंगन के जूही के फूल खुल कर अपनी खुशबू बिखेरने लगते. नाम था प्रीतो.

हुआ यूं कि मेरी एक बड़ी पुरानी सहेली अपने घर जा रही थी. मेरे पति विदेश गये थे. घर वैसे भी काटने को दौड़ रहा था. सो जब मेरी सहेली ने ये प्रस्ताव रक्खा कि प्रीतो को कुछ दिन में घर में रख लूं तो मैंने फौरन हां कर दी. मेरी सहेली का दायां हाथ थी प्रीतो. ये मैं जानती थी. उसके किंडरगार्डन स्कूल के बच्चे उसे तीतो कह कर स्कूल में घुसते और फिर वो उनकी पीत आंटी हो जाती. प्रीतो को प्रीत कहलवाने का शौक था. स्कूल से लेकर तकिये के गिलाफ तक का काम प्रीतो के सुपुर्द था. पर जब छुट्टियों में मैडम घर जाने लगी तो प्रीतो को साथ ले जाना उसकी बनिया बुद्धि को ठीक न लगा. मेरी ये सहेली बचपन से ही दबंग थी. एक बार गोलगप्पे वाले से उसका झगड़ा हुआ और मैडम की चप्पल की मार से वो भाग गया था. तब हम सब गोल गप्पे के खोमचे पर टूट पड़ने को ही थे कि मैडम खोमचे वाले की जगह बैठकर प्लेटें सजाकर सब को देने लगी.

आनन-फानन में गोलगप्पे हवा हो गये. तब उसने इमली के पानी की तुर्शी से सी-सी करते हुए बताया, "मुआ मुझ अकेली को देखकर आंख मार रहा था मैंने देसी जूती से वो पिटाई की कि भाग गया." तब से हम उसे मैडम ही कहते थे. असली नाम भूल ही गये. पर मैडम को कोई न भुला सका. उसके प्रस्ताव पर मैं थोड़ी नाखुश भी थी पर सोचा प्रीतो की रौनक रहेगी. दो दिन पहिले ही मैडम प्रीतो को लेकर घर आ गयी थी. उसको कई किस्म के भाषण पिलाने के बाद जब मैडम ट्रेन पर बैठी तो प्रीतो जो उसका राई-रत्ती संभाल कर देती रही थी. थक कर चूर हो चुकी थी. आते ही जब दो सैरीडान खाकर वो सो गई तो मैंने भी उससे कुछ न पूछा.

जिस प्रीतो के लिए वह मैडम तक से लड़ पड़ी थी . . . आज उसी प्रीतो को वह एक रात सोने तक के लिए जगह देने से इनकार कर गई. समय क्यों इतना बदल देता है आदमी को!

मार्मिक डोंगरी कहानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं जोर से चिल्लाई, "प्री.....तो...."

"जी मैडम." वो जैसे सिर पर ही खड़ी थी.

"खबरदार जो तुमने मुझे मैडम कहा".

"तो!" वो मासूमियत से बोली "तो फिर क्या कहूं मैडमजी?"

"पहले ये नल बंद करो, और तुम दीदी कह सकती हो."

वो मुझसे कब आकर लिपट गयी मैं ये जान ही न पायी. 'दीदी-दीदी' कहकर उसने सारा घर गुंजा दिया. और अपनी इस उदारता से मैं घमंड से फूल उठी. फिर उसके अतीत की चंद पोटलियां पल भर में ही मेरे सामने बिखरी पड़ी थीं.

प्रीतो अकेली बेटी थी. तीन-चार भाइयों की अकेली बहन. पर उसका बाप जो बढ़ई से ज्यादा शराबी था, उसने इसके जरा-सा बड़ा होते ही इसे नंबरदार के बेटे को ब्याह दिया. उसे पुराना दमा था. इस अन्याय का विरोध कौन करता!

भगवान की करनी, सुहागरात के दिन ही सप्तनदी में अग्नि का धुआं पी-पीकर दूल्हे महाशय को दमे का ऐसा दौरा पड़ा कि उसे अस्पताल ले जाना पड़ा. सुहाग शैया पर बैठी-बैठी प्रीतो सोयी रही.

किसी ने उधर झांका भी नहीं. सुबह लोगों ने कहा कुलच्छनी ने आते ही पति पर वार कर दिया.

तभी हमारी मैडम वहां पहुंच गयी और शौहर के मरने से पहले ही उसे घर ले आयी. सारे गांव के मुकाबले में वो अकेली ही थी. पर दबंग ऐसी कि उसे देखते ही नंबरदार हुक्का छोड़ उठ खड़ा हो. इसी दबंगता की वजह से आज तक उसकी शादी न हो पायी थी. ऐसी ख्याति थी कि पुरोहित भी टीप लेकर कहीं जाने को राजी न होता. सो कुआंरी ही रह गयी. प्रीतो की आंखों में तैरते सपने मैडम ने बड़ी आसानी से पोंछ डाले और शहर में आकर बच्चों का किंडर गार्डन खोल दिया. प्रीतो को सहारा मिला तो उसने अपना सारा मन बच्चों में ही लगा लिया. मैडम उसे प्यार भी करती है पर मजाल है जो कभी पता चलने दे.

प्रीतो, जिसने शादी के सुहाग सुने, भांवरों में शरमा-शरमाकर पांव रखे, अग्नि के आगे कस्मे-वादे करते समय पिघलती रही वो प्रीतो कब तक अनुशासन में रहेगी इसका भय मुझे बराबर लग रहा था. मेरे घर में आते ही जरा-सी सहानुभूति उसकी आंखों में फिर से सपनों-से संदेसे बुनने लगी. सारा काम हंसते-हंसते निपटा लेती. और सारा दिन कोई छह बार कंघी करके महा उबाऊ हेयर स्टाइल बनाती रहती. बिंदी लगाने का उसे बड़ा चाव था. मैंने एक दिन कहा, "प्रीतो तू बिंदी लगाकर मिटा क्यों देती है?"

उदास होकर बोली, "वो जो मर गया है. पर दीदी मेरा मन बिंदी लगाने को करता है."

"उससे तेरा क्या वास्ता है. ये कोई शादी थोड़े ही थी."

वो उत्साहित होकर बोली, "यही तो मैं कहती हूं. पर मैडम हमेशा टोक देती हैं. कहती हैं लाल बिंदी सिर्फ सुहागिनें लगा सकती हैं."

"तुम काली बिंदी लगाया करो."

शपथ का पालन

■ महादेवी वर्मा

देश स्वतंत्र होते ही हिंदी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लेना चाहिए था. अवधि देना ही अभिशाप बन गया. जो देश स्वतंत्र हुए उन्होंने तुरंत ही अपनी राष्ट्रभाषा बना ली. रूस को ही लें, वहां छियालिस भाषाएं बोली जाती हैं. लेकिन राष्ट्रभाषा रूसी है. चीन और जापान आदि देशों में अपनी राष्ट्र-भाषा है. राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने की शक्ति राष्ट्रभाषा में है लेकिन हमारे देश के राजनेता भूल गये हैं. मुझे खूब अच्छी याद है कि बापूजी के समक्ष मैंने शपथ ली थी, 'हिंदी बोलूंगी तथा सोने-चांदी के आभूषण नहीं धारण करूंगी.' आज तक मैं उस शपथ का पालन कर रही हूं. आश्चर्य तो यह है कि सर्वप्रथम हिंदी की आवाज दक्षिण भारत से ही प्रारंभ हुई और आज वहीं इसका विरोध हो रहा है. इसका मुख्य कारण राजनीति है. राजनीति ने भाषा को शतरंज का मोहरा बना लिया है. केवल 'वोट' के लिए ही हिंदी का विरोध हो रहा है. और कोई कारण नहीं है. जहां तक निवारण का प्रश्न है, यह केवल जनता के हाथ में है. एक दिन ऐसा आयेगा कि जनता स्वयं इसका निवारण कर लेगी क्योंकि जन-मानस में हिंदी के प्रति अगाध प्रेम है. □

(शिवमूर्तिलाल द्वारा महादेवी वर्मा से लिये गये साक्षात्कार से. . .)

"हां दीदी, काली बिंदी तो लगा ही सकती हूं. और अब उसे मरे एक साल तो हो ही गया है. अब उसका प्रेत मुझे तंग नहीं कर सकता." ये कहकर वो खिलखिलाकर हंस पड़ी. इतनी हंसी कि उसकी दोनों आंखें आंसुओं से भीग गयीं. नाक सुड़ककर वो अपने आंसुओं को पोंछते-पोंछते कहने लगी, "दीदी अगर वो जिंदा रहता तो मैं गांव कभी न छोड़ती. शादी से पहले एक बार उसने रास्ते में मेरा हाथ पकड़कर कहा था 'कसम खा प्रीतो, मुझे कभी छोड़कर न जाओगी.' मैंने अपने सबसे मीठ आम के दरख्त की कसम खाकर कहा था 'कभी-नहीं.' तभी किसी के कदमों की आहट सुनी थी और उसने मेरा हाथ छोड़ दिया था. उसके घरवाले कहते हैं, हमें पता था ये ज्यादा दिन न रहेगा. हमने तो शादी इसलिए करवा दी थी कि प्रेत बनकर हमें तंग न करे.

मैंने कहा "प्रीतो तू अभी बीस की भी तो नहीं हुई, ऐसी बातें क्यों करती है? तेरी किसी भी बात से नहीं लगता कि तेरी शादी हो चुकी है.

"दीदी, पति को लेकर जो सपने मैं बुना करती थी उनका राजकुमार यह न था. वो सपने बड़ी बेरहमी के साथ मेरी आंखों में से पोंछ दिये गये. अब उस नयी स्लेट पर कोई न कोई रोज आकर मिट जाता है. कोई मूरत बनती ही नहीं."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाइफ़बॉय है जहां तन्दुरुस्ती है वहां

लाइफ़बॉय है तन्दुरुस्ती का नाम.
दिन-भर की कड़ी मेहनत के बाद...
या जोशीले फुर्तीले खेल के बाद
लाइफ़बॉय से नहाने का मज़ा ही कुछ
और है... यह आप में फिर से सफ़ाई
और तन्दुरुस्ती की उमंग जगाता है!

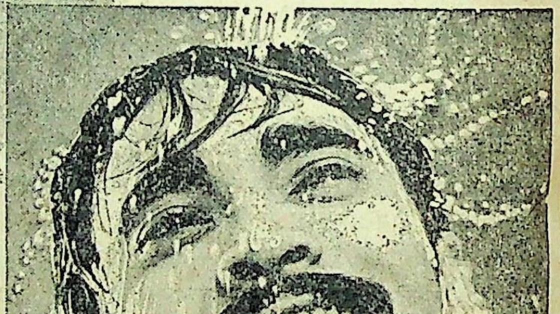

लाइफ़बॉय मैल में छिपे कीटाणुओं को धो डालता है.

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

LINTAS.L 88 2015 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने प्यार से पूछा, "तुम्हें कोई अच्छा लगता है प्रीतो?"

"नहीं, पर जी चाहता है मैं किसी को अच्छी लगूं. हाथ पांव में मेहंदी, मांग में सिंदूर, लाल जोड़ा और सुरमी आंखें, इनके साथ अगर सुहाग होता है तो मेरा भी हुआ था. पर सुहाग तो पति के साथ होता है. और वो मैंने देखा नहीं."

"प्रीतो, मैडम का किंडर गार्डन तू ही संभालती है. अगर तुझे कोई अच्छा लगे तो क्या सब छोड़ जायेगी."

"पता नहीं दीदी?"

"पर मैडम क्या ये बात कभी सह पायेगी!"

"यही तो बात है, मैडम का मुझ पर पूरा भरोसा है. इसी से मुझे डर लगता है कि कहीं कोई अच्छा न लगे. मैडम तो मैडम बच्चों के मां बाप भी मुझी पर भरोसा करते हैं. मडम को तो सबके नाम भी नहीं आते. और फिर अगर एक दिन अपने हाथ से बनाकर न खिलाऊं तो मैडम खाती ही नहीं. कभी-कभी मेरा मन नहीं करता तो भी बनाती हूं. किसी को भूखा रखना पाप है न दीदी?"

दो महीने कब निकल गये पता ही न चला. एक दिन मैडम आयी और प्रीतो को लेकर चली गयी. जाती बार प्रीतो ने मुझसे कहा था, "दीदी मुझे भूल न जाना. मैं तो न आ पाऊंगी पर आप आना, मुझे बुलाओगी न दीदी?" मैंने उसके हाथ अपने हाथों में लिये और अपने आंसू किसी तरह उससे छुपाकर उसे हौसला दिया.

एक दिन भरी दोपहरी में मैं सोने जा रही थी तो मैडम आ धमकी, "यहां प्रीतो आयी है."

मैं जड़वत खड़ी रही, कुछ उत्तर न सूझा. जवान-जहान लड़की आखिर कहां गयी? मुझे चुप देखकर मैडम बोली, "उसे आग लगी है ये तो मैं जान गयी थी. बस गलती एक ही हुई कि उसे मैं सब्जी लेने अकेली भेजती रही. सब्जी की टोकरी में छुपाकर बिंदी ले जाती थी और मरघट के पास जाकर लगाती थी. क्या आग है बिंदी लगाने की. जब भी कलमुंही आती, देर लगाकर आती. फिर कपड़े इस्तरी करते वक्त सब्जी काटते वक्त या चपातियां सेंकते कसे-कसे तो शरमाकर मुस्कराती थी पट्ठी. मुझे क्या पता था इसे क्या मौत पड़ी है. नहीं तो उड़ने से पहले ही पर काटकर फेंक न देती. मुझे तो डर लग रहा था कहीं पागल न हो जाये. यह सब कुछ दिन पहले एक बच्चे की मां ने न बताया होता तो मुझे कहां पता चलना था. कोई मुआ दरजी है सब्जीवाले की दुकान के पास. उसी के साथ भागी होगी रांड. उसी के साथ आंख मटक्का चल रहा था. एक बार मिले तो पुलिस में देकर छुट्टी पाऊं."

मैंने उसकी बातों का परनाला रोकते हुए कहा, "मैडम, तुम रूखी-सूखी लड़की हो अगर वो नागरबेल कहीं सहारा ढूंढ़ती है तो जाने दो उसे. उसे खुशी ढूंढ़ लेने दो."

बिफरकर मैडम चिल्लायी, "ओह तो ये आग तुम्हारी लगायी हुई है. मुझे पहले ही समझ लेना चाहिए था कि मेरी ट्रेनिंग में कहां गलती हुई है."

"मुझे फरेब नहीं खाना है मिसेज आदित्य वर्मा. आप घर में रखकर देखिए, अगर तुम्हारे पालतू आदित्य को भी न झटका दे दे तो मेरा नाम भी तोषी नहीं. दिन-रात उसकी इशारेबाजियां क्या मेरी नजरों से नहीं गुजरतीं. अगर इस स्कूल की मुसीबत न होती कब की भेज देती उसी गांव में जहां से कसाइयों के हाथ से इसे छुड़ाकर लायी थी."

"शादी करवा दो उसकी." मैंने कहा.

"हां यही तो करना चाहिए था. और फिर तू भी करवा सकती है."

मैंने कहा, "वो तुम्हारी जिम्मेदारी है तोषी. मैं तो खाली शादी में आ जाऊंगी. चलो चाय पियें.

तोषी बोली, "तुम मेरा कलेजा और जलाना चाहती हो."

मैंने प्यार से उसका हाथ पकड़ा, "चलो मैडम, तुम्हें रूहअफजा पिलाती हूं." उसके बाद उसका जी थोड़ा हल्का हुआ तो मैंने कहा मैडम उसकी शादी कर दो. लड़की जवान और भावुकता की मारी है. उसके हालात में एक बार अपने-आप को खड़ा करो. और सोचो.

मैडम बोली, "मैं कोई अच्छा लड़का देखकर कुछ कर पाती, इसके पहले ही लगता है वो भाग गयी है. आज दूसरा दिन है. तौबा-तौबा अभी तो शाम की क्लासों के लिए बड़े बच्चे आते होंगे. मैं चली."

मैडम को गये कई दिन हो गये. उसे पूछने का हौसला मैं न जुटा पायी. फिर सब कुछ भूल-भुला गयी. एकदिन शाम के वक्त मैंने दरवाजा खोला तो प्रीतो सामने खड़ी थी. पीछे एक लंबा-तड़गा खूबसूरत-सा लड़का. शराब से बीर-बहूटी उसकी आंखें जैसे मेरे भीतर कुछ कंपा-सा गयीं. बिखरे बाल और दंभ से भरे चेहरे पर का मस्तक उसने मेरी अभ्यर्थना में जरा-सा झुका भर दिया. प्रीतो ने कहा, "यही दीदी हैं."

मैं स्नेह से दोनों को अंदर ले आयी. कमरे में दोनों को बिठाकर थोड़ा चाय का पानी चढ़ाने जसे ही रसोईघर में गयी तो प्रीतो पीछे-पीछे आ गयी.

हंसकर बोली, "कैसा है?"

मैंने कहा, "अच्छा."

वो हंसी, फिर बोली, "शराब तो रात को पीता है, आंखें हमेशा लाल रहती हैं." होठों के कई बल संवारकर वो हंसने लगी. हंसते-हंसते उसकी भरी आंखों से नजरें हटा मैंने पूछा "मैडम को मिली?"

प्रीतो ने नीची नजर करके कहा, "गयी थी, उसने निकाल दिया. और कहा दोबारा यहां मत आना. प्रकाश बड़ा गुस्सा हुआ." थोड़ा ठहरकर बोली, "दीदी मुझे पुरानी धोतियां देना. ये एक ही धोती है. मैडम की थी."

मैंने उसे धोतियों के साथ शगुन के रुपये भी दिये. और प्यार से कहा, "प्रीतो मैं हूं."कभी उन्नीस-बीस हो तो याद रखना. प्रीतो मेरे सीने से लगकर रो पड़ी. मुझे मालूम था वो गलती कर चुकी है. ये आदमी पति जैसा तो नहीं लग रहा.मैंने उसे भी जाते समय शगुन दिया. पता नहीं क्या हुआ, उसने मेरे पांव छुए. मुझे लगा बेटियां ऐसे ही विदा होती हैं.

फिर कुछ दिन बाद मैडम का फोन आया. बगैर भूमिका बांधे उसने कहा, "क्या दोस्ती निबाह रही हो मिसेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदित्य वर्मा, कल तुम्हारी वही साड़ी पहने प्रीतो मिली थी जो हमने साथ-साथ कालेज के मेले से खरीदी थी. कमाल किया तुमने, साड़ी दी तो दी धुआं तक न निकला कि वो आयी थी. देखना कहीं साड़ी से कभी आदित्य को भुलावा न हो."

आदित्य, मैं चौंकी. ये मैडम कितनी रहमदिल हैं. उसके दूसरे ही दिन प्रीतो फिर आयी पर अकेली. आते ही मेरे पीछे-पीछ रसोईघर में आकर बोली, "मुझे बैंगन की पकौड़ियां बना दोगी?" मैंने उसे भरपूर नजर से देखा. वो शरमायी और कहने लगी, "अभी तो तीन-चार महीने हैं." आज वो नासिक गया है तभी आ सकी हूं. मुझे कुछ पैसे भी दोगी न. वो तो खाली राशन लाकर रख देता है. एक भी पैसा हाथ में नहीं देता. बाहर से ताला लगा कर दुकान पर जाता है. कभी भुने चने खाने को मन करता है. रात को उसकी पेंट से गिर जाते हैं तो ले लेती हूं." फिर अचानक खुश होकर बोली, "वहां एक खिड़की है जिससे फांदकर मैं कभी-कभी निकल जाती हूं. पर एक दिन पड़ोसिन ने उसे बता दिया था. उस रात उसने मुझ बहुत मारा."

मैंने उसकी ओर देखे बिना पूछा, "कोई शादी का कागज है तुम्हारे पास."

बोली, "नहीं शादी तो मंदिर में हुई थी."

पैसे लेकर प्रीतो चली गयी. चार बरस उसका कोई पता न चला. एक दिन मैडम खबर लायी थी कि उसका पति उसे बहुत मारता है. देवर ने छुड़ाने की कोशिश की थी सो उसे भी मारा और प्रीतो को घर से निकाल दिया. ये तो पड़ोसियों ने बीच-बचाव करके फिर मेल करा दिया. मैं थोड़ी दुखी हुई फिर सोचा, बच्चे हैं. बच्चों के सहारे औरतें रावण के साथ भी रह लेती हैं. वे बड़े हो जायेंगे. उनके साथ प्रीतो भी बड़ी हो जायेगी.

इसी तरह एक शाम आयी. साथ लायी कुछ मेहमान. आदित्य बाजार से कुछ सामान लाने गये थे. तभी दरवाजे की घंटी बजी. दरवाजा खोला तो एक अजनबी औरत अपने फूल से दो बच्चों को थामे थामे खड़ी थी. मैंने सोचा किसी का पता पूछना चाहती है. मैंने उसे सवालिया नगाहों से देखा. वो मुस्कुराई. होठ मुरझाये से थे तो भी मुस्कुराहट पहचान लेने में मुझे ज्यादा देर न लगी. मैंने कहा, "प्रीतो!" वो बच्चों की उंगलियां छुड़ाकर मुझसे यूं लिपटी जैसे इस भरी दुनिया में उसे पहचाननेवाली सिर्फ मैं अकेली थी.

मैंने उसे छुड़ाते हुए कहा, "'प्रीतो, घर में मेहमान हैं. आओ अंदर चलो." उसे बिठाकर मैंने बच्चों को दूध और बिस्किट दिये. उन्हें खाता छोड़कर प्रीतो मेरे पीछे-पीछे आ गयी. बगैर भूमिका बांधे उसने कहा, "दीदी, वो चला गया है दुबई. घर भी किसी और को दे गया है. सिर्फ आज रात मुझे रह लेने दो."

मैंने कहा, "प्रीतो ये मेहमान आज ही आये हैं. तुम्हें कहां सुलाऊंगी?"

प्रीतो ने कहा "इन्हें लेकर मैं बरामदे में सो जाऊंगी. कल सवेरे यही मुझे किसी को मिलना है. वो मेरा कोई इंतजाम करनेवाले हैं. मैडम मुझे किसी आश्रम में भेजना चाहती हैं. बस कुछ दिन की बात है."

मेरा माथा ठनका. मैंने कहा, "तुम मैडम के घर क्यों नहीं गयी."

"वो कभी नहीं रखेगी दीदी. और फिर मैं आश्रम नहीं जाना चाहती."

"पर क्यों?"

"अगर कभी उनका बाप आया तो?"।

मैंने कहा, "अगर उसे आना होता तो जाता ही क्यों?" उसने कहा "बस कुछ दिन इंतजार करूंगी. कुछ दिन की बात है."

मेरी आंखों के आगे आदित्य का चेहरा घूम गया. मैडम की बात भी याद आयी. उन्होंने जो कहा था मुझे याद था. एक रात उनकी मर्जी के बगैर भी रख सकती थी. पर प्रीतो को ये पूछने का साहस मुझमें न था कि कल कहां जाओगी. ये मैं जानती थी सिवाय मैडम के उसे कोई आश्रम में जाने को राजी न कर सकेगा. यही एक लम्हा था अगर मैं कमजोर पड़ जाती तो उसके जाने का कल न जाने कब आता. मैंने अपने अंदर के इंसान का गला दबाया. और कहा, "नहीं प्रीतो यहां रहना मुमकिन नहीं है. ये लोग हमारे जेठ की लड़की देखने आये हैं लड़की कल दिल्ली से आयेगी. ऐसे नाजुक रिश्तों के दौरान मैं घर में कोई अनहोनी नहीं कर सकूंगी. तुम पैसे लो अगर कल सवेरे यहां किसी को मिलना है तो टैक्सी में आ जाना. अब तुम जाओ." मैंने उसके दोनों बच्चों को उंगली से लगाया. दरवाजे के बाहर जाकर चौकीदार से टैक्सी मंगवायी और बच्चों के साथ प्रीतो को बैठते देखा. उसकी पसीने से तर हथेली में कुछ नोट खोंस दिये. टैक्सी के जाने का इंतजार किये बगैर, घर आकर दरवाजा बंद कर लिया.

ये दरवाजा मैंने प्रीतो के लिए बंद किया था या अपने लिए ये न जान पायी. रात भर मुझे चराहों के ख्वाब आते रहे. फिर कई दिन मैं दीवारों से पूछती रही.—कल कहां जाओगी?" □

चलते-चलते

कबाड़ी की दूकान पर हारमोनियम, तबला, वायलिन और बांसुरी के साथ दुनाली बंदूक भी रखी देख एक सज्जन पूछ बैठे, "आखिर इन सब संगीतमय चीजों के साथ बंदूक रखने की क्या तुक है?"

कबाड़ी ने बड़ी संजीदगी से कहा, "देखिए, जो नौसिखिया हारमोनियम लेकर जाता है उसके दो दिन बाद उसका पड़ोसी हमसे बंदूक मांगने आता है." □

■ कल्पना आंचलिया 'टोनी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

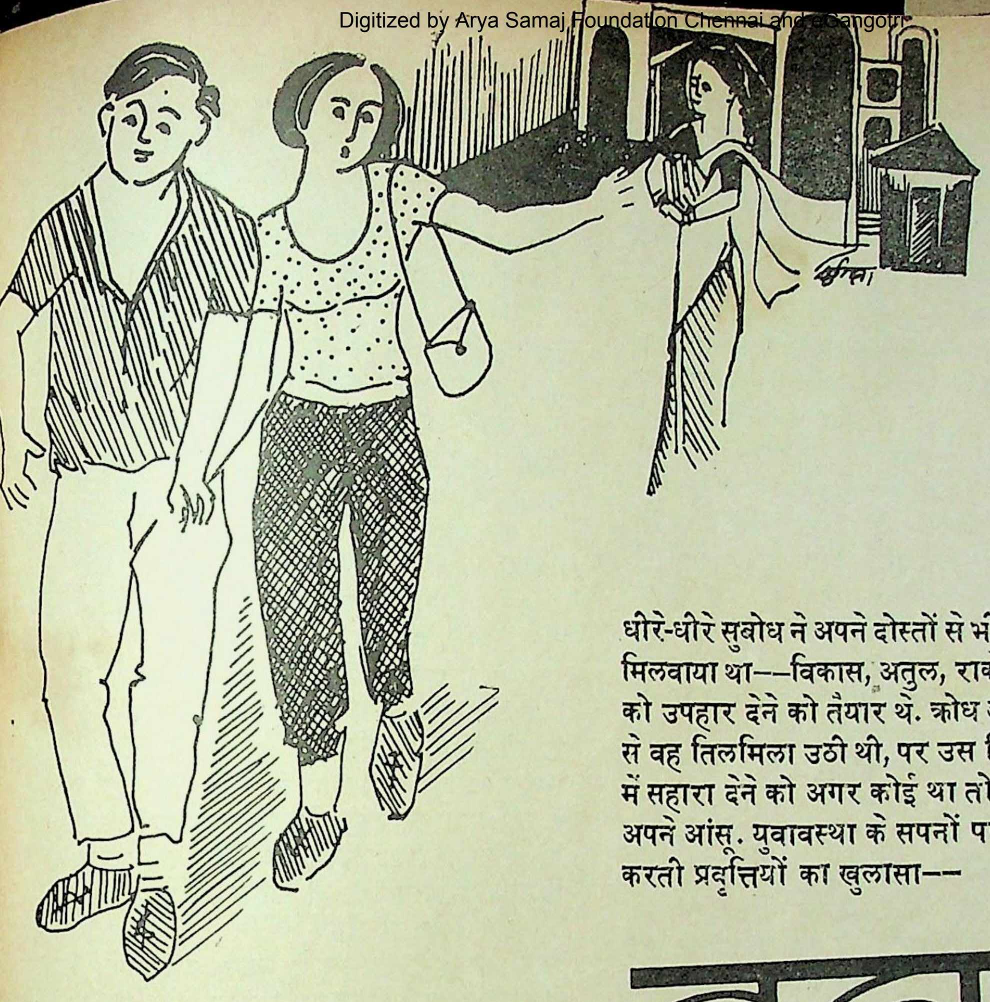

धीरे-धीरे सुबोध ने अपने दोस्तों से भी उसे मिलवाया था——विकास, अतुल, राकेश, सब रोली को उपहार देने को तैयार थे. क्रोध और अपमान से वह तिलमिला उठी थी, पर उस स्थिति में सहारा देने को अगर कोई था तो उसके अपने आंसू. युवावस्था के सपनों पर आघात करती प्रवृत्तियों का खुलासा——

बहाव

अरुणा सीतेश

उसने सुना तो बहुत था कि 'जीवन एक नाटक है' पर अचानक कोई बात इतना नाटकीय मोड़ ले लेगी, उसकी कल्पना वह पहले कभी नहीं कर पायी थी.

लगभग डेढ़ बरस पहले का वह दिन. . . लगता है जैसे कल की ही बात हो. घर छोड़कर हॉस्टल में रहने का उसको पहली बार मौका पड़ा था. मन में तरह तरह की आशंकाएं थीं——कैसे रह पायेगी मम्मी पापा से दूर, गुड्डू भैया से दूर, विभा से दूर, बिट्टू से दूर. आज तक तो कभी यों अकेली नहीं रही थी——कहीं जाती भी तो विभा साथ होती, नहीं तो गुड्डू भैया. और जाना भी ऐसा कितना. . . कभी दस पांच दिन को मौसी के यहां चले गये या फिर बुआ के यहां. चाचाजी तो दूर ही इतने थे कि प्रोग्राम बनते-बनते हर बार ही बिगड़ जाता. और ताऊजी के कस्बेनुमा शहर में भेजने से मम्मी घबराती थीं, "बच्चों को जुकाम भी हो गया तो ढंग की दवा नहीं मिलेगी, पर. . ."

ऐसे सुरक्षित माहौल से निकलकर अनजान वातावरण में, अनजान लोगों के बीच अचानक रहने जाना. . .. सोच-सोच कर ही रोली कभी घबरा जाती, कभी उदास हो जाती तो कभी बेतरह डर जाती. वही क्या, मम्मी का तो उससे भी बुरा हाल था——दिन में दस बार तो उससे कहती ही होंगी, "रोली बेटा, घबराना नहीं. बीच-बीच में कोई न कोई चक्कर लगाता ही रहेगा, कोई भी परेशानी हो तो तुरंत लिखना." रोली क्या स्वयं नहीं जानती थी कि पापा का यों अचानक तबादला न हो गया होता तो उसे हॉस्टल में में रहने की क्या जरूरत थी. वह यह भी जानती थी कि उसी की भलाई के लिए तो मम्मी-पापा उसे यहां दाखिल करवा रहे थे. जहां पापा की पोस्टिंग हुई थी, वहां तो कालेज की कौन कहे, हाई स्कूल भी ले-देकर एक ही था. मजबूरन रोली को हॉस्टल में रखना पड़ा. और जब हॉस्टल में ही रहना है तो क्यों न किसी बड़े शहर के अच्छे से अच्छे कॉलेज में जाओ. पापा का कहना था कि लड़की के आगे तो अभी सारी जिंदगी पड़ी है——अच्छे कॉलेज में रहेगी तो अच्छी पढ़ाई-लिखाई होगी. अच्छी बातें सीखेगी. और रोली की जिंदगी बनाने के लिए उन सबको मन मारकर उससे अलग होने के लिए तैयार होना पड़ा था. वरना क्या रोली नहीं जानती कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापा की बंधी बंधाई आमदनी में से उसका हर महीने का इतना खर्च निकाल पाना मम्मी के लिए कितना मुश्किल होता होगा. गुड्डू भैया पहले से ही बाहर पढ़ रहे थे. . . पर बच्चों की भलाई के लिए मम्मी-पापा से कुछ भी करने को कहो, वे एकदम तैयार हो जायेंगे. भले हो खुद उन्हें कितनी ही तकलीफ क्यों न उठानी पड़े.

हॉस्टल पहुंचने के बाद भी यही सब सोच-सोचकर रोली को रुलाई आती रही. हर तरफ नये-नये चेहरे, रहने-सहने का एकदम अलग ढंग और ऊपर से सीनियर्स का रोब और दबदबा. वो तो भला हो बेला का, जिसने दो गानों पर ही रैगिंग नाम के भूत से उसे छुट्टी दिला दी, वरना उसके साथ की कई लड़कियों को तो कई-कई रात तक रगड़ा गया था.

नाते-रिश्ते भी कैसे अनजाने ही बन जाते हैं, वरना बेला से उसका क्या संबंध था. यही तो न कि दोनों को एक ही कमरे में रहने के लिए कहा गया था. बेला बी. ए. के दूसरे वर्ष में थी यानी उससे पूरे एक साल आगे. हॉस्टल के चलन के हिसाब से तो बेला को भी रोली की खिंचाई करनी चाहिए थी, बल्कि औरों से कुछ ज्यादा ही खिंचाई करने का हक बनता था उसका. आखिर वह रोली को अपने कमरे में रहने की जगह दे रही थी, पर नहीं. . . बेला ने न तो स्वयं ही रोली को परेशान किया और न ही और किसी और को करने दिया.

रोली का मन बेला के प्रति कृतज्ञता से भरा था, बेला ने जैसे हर तरह से उसे अपनी छत्रछाया में ले लिया हो. कॉलेज की गतिविधियों के बारे में ही नहीं, हॉस्टल के सारे कायदे-कानून के बारे में भी उसी ने रोली को समझाया था. इस नये शहर के चप्पे-चप्पे से भी बेला ने ही रोली की पहचान करायी थी. और फिर तो हाल यह हो गया कि रोली बेला की छाया बनी दिखाई देती. बेला के कारण ही तो रोली का मन इन सब नये लोगों के बीच लगा था. यहां आने से पहले तो घर से दूर रहने के नाम से उसे कंपकंपी-सी छूटती थी.

ढाई महीने बाद दशहरे की छुट्टियों में घर गयी तो रोली को लगा जैसे मम्मी-पापा से बरसों बाद मिल रही है.

छुट्टियां खत्म होने पर जहां एक ओर घर छोड़ने का दुख था, वहीं दूसरी ओर बेला से मिल पाने की खुशी भी. और यह खुशी एकतरफा ही हो, ऐसी बात नहीं थी. बेला तो देखते ही उससे चिपट गयी. फिर भागकर वे सब चीजें निकाल लायी, जो उसने खास तौर पर रोली के लिए खरीदी थीं——रोली तो देखती रह गयी——कितनी सुंदर चीजें थीं और कितनी सारी, कंगन, बिंदी, माला, मैक्सी, और भी जाने क्या क्या . . . इतना कुछ रोली भला कैसे ले सकती थी. . . वह तो बेला के लिए कुछ भी नहीं लायी थी. गुड्डू भैया का खर्चा तो था ही था, अब उसकी पढ़ाई पर इतना खर्च करके मम्मी-पापा कैसे घर चला रहे थे——रोली से छिपा नहीं था.

उन्हीं दिनों बेला ने पंकज से रोली का परिचय कराया था. पंकज को रोली बेला के कजिन के रूप में जानती थी. अक्सर ही वह बेला से मिलने आता. अक्सर ही बेला उसके

संरचना

▣ खलील जिब्रान

ईश्वर ने जब संरचना की तो अपनी आत्मा के एक अं[श] को एक सुंदरी में बदल दिया. उसने उसे खुशियों [से] भरा एक चषक दिया और कहा, "इसे तब तक न पीना जब तक तुम अपने भविष्य और अतीत की चिंता को भुला न दो, क्योंकि इसके अतिरिक्त खुशी कुछ नहीं होती.

उसने उसे दुखों से भरा प्याला दिया और कहा, "ज[ब] पिओ तो इस प्याले से पीना, तुम जीवन की खुशियों की क्षणभंगुरता को समझोगी, क्योंकि दुख अनंत हैं."

और ईश्वर ने उसे सांसारिक सुखों के लिए दिल [से] निकली पहली आह के साथ ही छोड़कर चले जानेवाला अनंत प्रेम दिया तथा खुशामद से पहले उन्मेष के साथ नष्ट हो जानेवाली मधुरता दी.

उसने उसको सही रास्ते पर ले चलने वाला विवेक दिया और उसके दिल की गहराइयों में एक ऐसी दृष्टि रो[प] दी, जो अदृश्य को देख सके. हर एक के लिए अच्छाई और स्नेह का भाव भर दिया. फरिश्तों द्वारा इंद्रधनुष के रेशों से बुना आशा का एक परिधान पहनाया. फिर ईश्वर ने उ[से] एक ऐसे चोगे से ढक दिया, जो जीवन और प्रकाश के उद[य] के समय की अस्पष्टता की छाया की तरह था.

तब ईश्वर ने अमर्ष की मिट्टी से भस्म कर देनेवाली आग, अज्ञान के मरुस्थल से झुलसा देने वाली हवा, स्वार्थ के सागर तट से तेज धार वाला बालू और अतीत के कदमों के नीचे की सख्त मिट्टी ली और मिला दिया. जो उससे बना वह पुरुष था. उसने आदमी को क्रोध और पागलपन की तरफ ले जानेवाली ऐसी अंधशक्ति दी, जो केवल इच्छाओं की पूर्ति पर ही तुष्ट होती है. उसे जो जीवन दिया, वही मृत्यु की छाया है.

ईश्वर खूब हंसा और खुशी से चिल्लाया. उसका हृदय आदमी के लिए अनंत प्यार और दया से भर गया. तब उसने पथ-प्रदर्शन के लिए उसे अपनी शरण में ले लिया. □

प्रस्तुति ▣ गिरिराज किशोर

साथ बाहर घूमने जाती. रोली कभी-कभी सोचा करती कि काश उसके भी चचेरे-ममेरे भाई कभी मिलने आते तो वह भी और लड़कियों की तरह बन-ठनकर उनके साथ घूमने जाती, पर ले-देकर मंझली मौसी के विजय भैया एक बार आये थे——सो भी घड़ी देखकर आधा घंटे के लिए. रोली मन मसोसकर रह गयी.

पंकज से मिलना हुआ तो धीरे-धीरे पंकज के दोस्तों से भी परिचय हुआ——सुबोध, नितिन, मयंक, कमल, रोली तो छुई-मुई सी बैठी रह जाती. रिश्तेदारों को छोड़कर जो भी लड़के आज तक उसके घर आये थे, वे सब गुड्डू भैया के दोस्त ही होते और जाहिर है कि भैया के दोस्त होते तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप ही उसके भी भैया बन जाते, पर पंकज को रोली ने भैया कहकर बुलाया तो बेला खूब हंसी और पंकज भी. रोली की तो समझ में ही नहीं आया कि इसमें भला हंसने की क्या बात हो गयी. बाद में बेला ने ही उसे समझाया था कि ये हर लड़के को भैया कहने और भैया समझने की आदत अब रोली को छोड़ देनी चाहिए—ये सब छोटे शहरों की आदतें हैं. पहली बार रोली को पता चला कि छोटे शहर और बड़े शहर के चाल-चलन में भी फर्क हुआ करता है.

एक दिन सुबोध ने रोली को कॉफी पीने चलने के लिए कहा तो उसने साफ इंकार कर दिया. बिना मम्मी से पूछे ऐसे कैसे किसी के साथ जाया जा सकता है. . . सुबोध जिद करता रह गया, पर रोली नहीं गयी. बाद में बेला ने उसकी जमकर खबर ली, "चली जाती तो क्या गजब हो जाता? आखिर तुम कोई दूध पीती बच्ची तो नहीं, जो बात-बात में मम्मी-पापा की इजाजत लेती फिरो. एक कप कॉफी पीने को ही तो कह रहा था सुबोध. उसका मन रख ही लेती तो क्या मुसीबत आ जाती?" रोली सिर झुकाये सुनती रही. बात तो ठीक ही थी, पर रोली क्या करे? उसे तो यों किसी लड़के के साथ अकेले बाहर जाने की सोच कर ही घबराहट होने लगी थी. और फिर वार्डन की कड़ी निगरानी से बच निकलना कोई हंसी खेल था क्या?

धीरे-धीरे बेला ने रोली में भी हिम्मत पैदा की. अब रोली बड़ी हो गयी थी. उसे अपने दिमाग से काम करना चाहिए. जो कुछ वह सही समझती है, उसे करने में डर कैसा, झिझक कैसी? घर वालों के डर से आखिर कब तक वह अपने को समय की धारा से काटकर रखेगी और क्यों? इंसान कहां से कहां पहुंच गया है. चांद पर बसने की तैयारी हो रही है और रोली है कि कॉफी-हाउस तक जाने में कतरा रही है. हद हो गयी. उसे समय के साथ चलना चाहिए, यदि वह जिंदगी में कुछ करना चाहती है, जिंदगी में कुछ बनना चाहती है. जिंदगी में कुछ बन सके, इसी के लिए तो रोली यहां आयी थी. और रोली ने बेला की सीख मान ली.

पहली बार वह सुबोध के साथ कॉफी-हाउस गयी तो मन धुकधुक कर रहा था, पर वहां आसपास जब कई एक जाने-पहचाने चेहरे दिखाई दिये तो वह कुछ-कुछ आश्वस्त हो गयी. सुबोध बातें भी कितनी प्यारी-प्यारी करता था. कितना कुछ तो जानता था.

लौटते समय सुबोध ने रोली के लिए कई सारी चॉकलेट्स खरीदीं. रोली ने लाख मना किया, पर वह नहीं माना, "मेरी खुशी के लिए."

फिर तो हर दस-पंद्रह दिन पर यही होने लगा. सुबोध उसे घुमाने ले जाता. कभी कॉफी-हाउस तो कभी पिक्चर तो कभी यों ही कहीं पार्क में. हर बार लौटते समय रोली के लिए उपहार भी खरीदता. एक बार सूट खरीदा तो रोली ने बहुत मना किया, "इतनी मंहगी चीज वह कैसे ले ले?" पर सुबोध ने अपनी कसम चढ़ा दी.

इधर सुबोध लगभग हर रोज आने लगा था. रोली को वह अच्छा भी बहुत लगता. कितना तो खयाल रखता उसका. मम्मी की चिट्ठियां भी हफ्ते-दस दिन में आती ही रहतीं कि परीक्षा में अच्छे अंक लाना आजकल कितना जरूरी है और अपने गुड्डू भैया से उसे किसी भी हालत में कम नहीं रहना चाहिए. बेला पढ़ती तो हंस देती, "लद गये वो जमाने, जब पढ़ाई का मतलब परीक्षा और रिजल्ट हुआ करता था. . . दुनिया कहां से कहां पहुंच चुकी है. . ."

रोली समझ ही नहीं पाती कि अपनी भोली-भाली मम्मी को ये सब बड़े शहरों की बड़ी-बड़ी बातें कैसे समझाये. इस छोटे से कस्बे में पहुंचने के बाद से तो मम्मी भी पुरातन-पंथी-सी लगतीं.

एक दिन सुबोध उसे एक होटल में ले गया, वहां की रंगीनी और थिरकते संगीत की मादकता में रोली खो-सी गयी. उसे पता ही नहीं चला कि कब सुबोध उसे ऊपर के किसी कमरे में ले गया, उस बंद अकेले कमरे में सुबोध ने रोली से जो चाहा, उसे सुनकर रोली अवाक रह गयी. अपनी दोस्ती का हवाला देकर सुबोध ने उसकी सब शंकाओं को दूर कर दिया.

वह दिन रोली कभी नहीं भूलती, कभी नहीं भूल सकती. लौटते समय सुबोध ने उसके लिए काफी कीमती उपहार खरीदा था, "आज की याद में."

उसके बाद का समय बड़ी तेजी से घूमा. सुबोध उसे चाहे जहां ले जाता और जो मन आता, करता. रोली की इच्छा-अनिच्छा का प्रश्न ही नहीं था.

"कीमत तो चुका देता हूं. . ." रोली के विरोध करने पर सुबोध ने कहा था. सुनकर रोली सन्न रह गयी. सुबोध के लिए उन उपहारों का राज वह आज समझ पायी थी.

"दुनिया में हर चीज की कीमत चुकानी पड़ती है." बेला ने अपने परिचित दार्शनिक अंदाज में रोली को समझाया था, "ठाठ से जीना है तो खाओ, पिओ और मौज करो."

रोली का विसूरना खत्म नहीं हुआ तो बेला की आवाज कुछ सख्त हो आयी, "इन दकियानूसी बातों में कुछ नहीं रखा है. . . रोयेगी तो पछतायेगी. . . कविता, सरला, मुक्ता, डेजी—किसी को भी देख ले—सब मौजमस्ती करती हैं और खुश रहती हैं. तू ही क्या सबसे निराली है?"

रोली क्या जवाब देती?

धीरे-धीरे सुबोध ने अपने दोस्तों से भी उसे मिलवाया था—विकास, अतुल, राकेश, सब रोली को उपहार देने को तैयार थे—एक से एक. क्रोध और अपमान से वह तिलमिला उठी थी, पर उस स्थिति में सहारा देने को अगर कोई था तो बस उसके अपने आंसू. रोली को लगा कि अपने आंसुओं के बहाव में वह स्वयं ठहर नहीं पायेगी. बेला ने ठीक कहा था—वह बड़ी हो गयी है—बहुत बड़ी. इतनी बड़ी कि स्वयं उसके पैर उसका बोझ उठाने में असमर्थ लग रहे थे. एक तेज बहाव के बीच में वह खड़ी थी—जहां भी पैर रखती, धार के साथ कटती हुई मिट्टी में उसके पांव धंसते चले जाते, गहरे और गहरे. □

● के-4/12 माडल टाउन, दिल्ली-110009

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

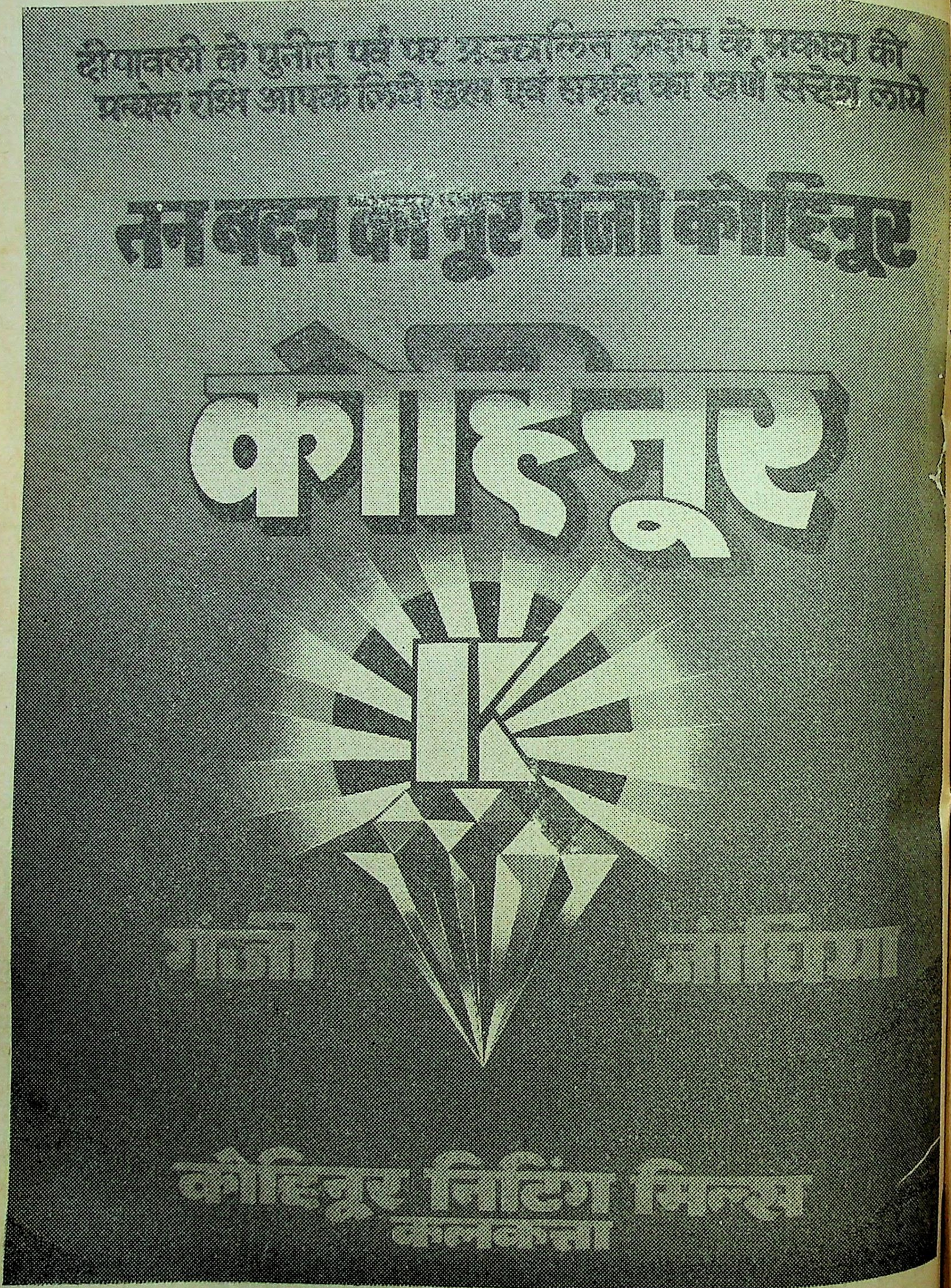

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

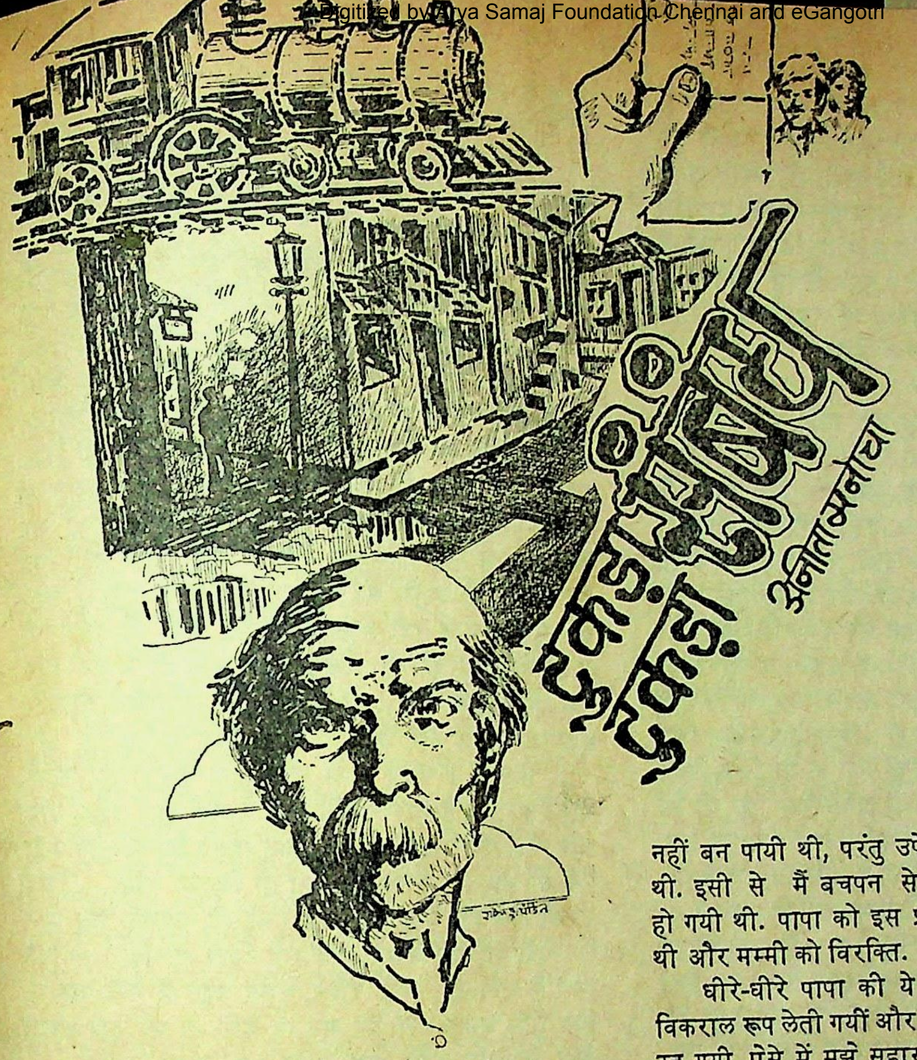

टुकड़ा-टुकड़ा ज़िंदगी

अनीता मनोचा

मेरी गोद में एक नवजात शिशु है. अभी कुछ ही घंटे पूर्व इस धरती पर अवतरित हुआ यह मानव-पुत्र मेरे शरीर की उष्मा में निश्चिंत सो रहा है. इस अबोध को क्या ज्ञान की मां-बाप दोनों ने अपने जीते-जी इसे अनाथ कर दिया है. मैं उसके चेहरे की ओर पूरे मनोयोग से देखती हूं–किस पर गया है यह, अपने पिता पर या मां पर? पर मुझे लगता है इसका चेहरा मैंने हर रोज सुबह दर्पण में निहारा है, जैसे मेरा अपना चेहरा इसके चेहरे में घुल-मिल गया है.

मेरे पापा ब्रिगेडियर खन्ना ने जब दूसरा विवाह किया, तब मनु भैया केवल आठ वर्ष के थे. मेरी मम्मी दहेज में दो बरस की एक नन्ही बच्ची और पुराने दिनों के कुछ घाव लेकर आयी थी. मम्मी को मनु भैया के सामने ले जाकर पापा ने उनसे कहा था, "मनु, ये तुम्हारी मां है, और यह तुम्हारी नन्ही-सी बहन, रश्मि." परंतु मनु भैया अपनी मां के बेटे थे. एक क्षण भौचक-से वह पापा की ओर देखते रहे और फिर सब कुछ समझकर एकाएक गुस्से से चीखकर बोले, "मेरी मां अभी जिंदा है और वही मेरी मां है. मेरी कोई बहन नहीं." पापा ने उन पर सब तरह की कठोरताएं, सख्तियां करके देख लीं, पर उन्होंने अपनी मम्मी को मां नहीं समझा. पापा को ठीक अपने ही जैसे जिद्दी स्वभाव के इस बेटे से असीम स्नेह था. अत: घर में तनाव का वातावरण बनता देख, पापा ने उसे लंदन के एक स्कूल में दाखिल करवा दिया.

रश्मि दीदी मम्मी की दुलारी बिटिया थीं, उनके प्रथम प्रेम की इकलौती निशानी, और नारी अपने प्रथम प्रेम को कभी विस्मृत नहीं कर पाती. इसी से अपने विगत दिनों की स्मृति इस बेटी पर, मम्मी की अपार ममता थी. प्रत्येक सप्ताहांत में वह उन्हें घर लातीं और फिर घर में वही सब होता, जो रश्मि दीदी चाहतीं. क्योंकि मेरे माता-पिता दोनों ही उपस्थित थे, इसलिए मैं सहानुभूति की पात्र तो नहीं बन पायी थी, परंतु उपेक्षा की पात्र अवश्य बन गयी थी. इसी से मैं बचपन से ही गुमसुम और एकांतप्रिय हो गयी थी. पापा को इस प्रकार के आचरण से बेहद चिढ़ थी और मम्मी को विरक्ति.

धीरे-धीरे पापा की ये चिढ़ और मम्मी की विरक्ति विकराल रूप लेती गयीं और मैं भरे-पूरे घर में नितांत अकेली रह गयी. ऐसे में मुझे सहारा दिया था स्वयं रश्मि दीदी ने. मम्मी की इस लाडली बेटी ने न जाने मेरी आंखों में क्या देखा था कि उन्होंने बाल्यावस्था का अपना मासूम स्नेह बिना मांगे मेरी झोली में डाल दिया. मैं उनका सबसे प्यारा खिलौना बन गयी थी. वह घंटों मुझसे खेलती-बतियातीं और मेरे बिना कहे वह सब मुझे दे जाती जिसकी ओर मैं प्रशंसापूर्ण दृष्टि से देख लेती. इससे मुझे एक लाभ हुआ. मम्मी ने अपनी प्यारी बेटी की मनपसंद वस्तुओं की सार-संभाल करते-करते मुझे भी सहेज लिया. और फिर मैं भी रश्मि दीदी के संरक्षण में उन्हीं के छात्रावास में भेज दी गयी.

पापा के बेडरूम में एक बहुत सुंदर शो-केस था. उसमें पापा ने मनु भैया के बहुत से फोटो सजा रखे थे. प्रत्येक वर्ष उस शो-केस में एक फोटो और बढ़ जाता. इस वर्ष रश्मि दीदी ने अपनी बी. ए. की पढ़ाई पूरी कर ली. और आगे पढ़ने की न तो उनकी इच्छा थी और न ही रुचि. मैंने इंटर की परीक्षा

युवा-लेखन
कहानी प्रतियोगिता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी थी और अब डॉक्टरी की पढ़ाई के लिए प्रतियोगिता में बैठने की तैयारी में जुटी थी. बोर्डिंग से हम घर आ चुके थे और हमें यहीं रहना था. घर में मैं दीदी और मम्मी ही थे. एक दिन पापा शाम को लौटे तो उनका चेहरा प्रसन्नता से दमक रहा था. उन्होंने हमें एक फोटो दिखाया, जिसमें मनु भैया अपनी इंजीनियरिंग की उपाधि ले रहे थे और फिर हमें बताया कि कल मनु घर वापस आ रहा है. उनकी इस प्रसन्नता में हम सब भी शामिल हो गये.

अगले दिन मनु भैया को घर लाने के लिए पापा और मम्मी दोनों गये थे. मैं और दीदी घर सजाने में लगे रहे. जब वे घर लौटे तो उन तीनों के बीच एक अदृश्य तनाव था. बचपन से ही ऐसी बातों की आदी मेरी नाक ने तुरंत सूंघ लिया कि इनके मध्य कुछ अप्रिय घट चुका है. परंतु वह क्या था, इसका कोई संकेत कहीं से हमें नहीं मिल पाया. बाद में एक दिन मम्मी ने रश्मि दीदी को बताया था कि मनु अपनी मां को बेहद चाहता है. वहां लंदन में बचपन से ही यह लड़का पार्ट टाइम जॉब करता रहा और अपने पापा के भेजे पैसों में से अधिकाधिक पैसे बचाता रहा. फिर इसके पास पर्याप्त धन हो गया तो यह बिना किसी को बताये भारत आया और मां को साथ ले गया. मां, जो कि टी. बी. की रोगी थी, उसका वह वहीं इलाज करवाता रहा. अब वह मां को साथ लेकर ही लौटा है और उसे साथ रखना चाहता है, जिसकी आज्ञा तुम्हारे पापा नहीं दे पा रहे.

उस दिन पापा ने हम में से किसी पर भी अपने मन में उमड़-घुमड़ रहे संघर्ष को प्रकट नहीं होने दिया. एक ऐसी मुस्कराहट के साथ जो जबरदस्ती उनके चेहरे पर आयी थी, उन्होंने मनु भैया को हमारे पास लाकर खड़ा कर दिया, "लो भई, खुद ही परिचित हो लो, पहचान लो कौन इनमें रश्मि है और तृप्ति." इतना कहकर पापा कमरे से बाहर चले गये थे. मनु भैया ने मुझे कंधों से पकड़कर मेरी आंखों में झांका और हंसते हुए बोले, "तृप्ति! बोलो, ठीक पहचाना ना. तुम्हें पहचानने का एक कारण है, तुममें उस आदमी का अंश है, जो मेरा जन्मदाता है." और उन्होंने मेरे मस्तक पर एक चुंबन अंकित कर दिया. रश्मि दीदी लजीली-सी चुपचाप एक कोने में बैठी थी. मैंने मनु भैया का हाथ पकड़कर उनके सामने खड़ा कर दिया, "यह. . ."

"विदेशी लड़की हमारे घर में?" भैया मुस्करा दिये थे.

"नहीं, ये रश्मि दीदी हैं." मैंने विरोध-सा करते हुए कहा. मनु भैया एकटक उस अनुपम सौंदर्य को देखते रह गये थे. फिर अचानक वह बोल उठे, "तुम कोई नहीं होती मेरी. मेरे पिता की प्रिय पत्नी के विदेशी पति की संतान मात्र हो तुम. कोई संबंध नहीं हमारा. क्या तुम मित्र बनोगी मेरी?"

रश्मि दीदी स्तंभित अपमानित-सी वहां से तुरंत हट गयी थीं और मेरा चेहरा क्रोध से लाल हो गया था, परंतु मनु भैया का चेहरा उसी तरह से दमकता रहा था.

मनु भैया को एक प्राइवेट फर्म में बहुत अच्छी नौकरी मिल गयी थी. वह अपनी नयी नौकरी पर जाने की तैयारी करने लगे. मम्मी ने बताया कि वह अपनी मां को भी साथ ले जा रहे थे. पापा की विरोध करने की शक्ति बेटे के सामने चुक गयी थी.

फिर वह दिन भी आ गया जब मनु भैया को यहां से जाना था. उससे एक दिन पहले शाम को मैं और रश्मि दीदी बाहर बाग में झूले पर बैठे अपने पालतू हिरन—सोना को अचार की फांक चटा रहे थे, तभी न जाने किस कोने से निकलकर मनु भैया हमारे सामने खड़े हो गये. उस अप्रत्याशित आगमन ने रश्मि दीदी को वहां से भागने का अवसर भी नहीं दिया. वह चुपचाप नीचा मुंह किये उस ओर देखती रहीं जिधर मनु भैया से अभी तक अजनबियत महसूस करनेवाला सोना भाग गया था. कुछ क्षण तक हमारे मध्य चुप्पी छायी रही. बात मनु भैया ने ही आरंभ की, "तृप्ति, मैं कल जा रहा हूं. आज मुझे कुछ सामान नहीं खरीदवा दोगी? यहां की दुकानों से मैं परिचित नहीं हूं." मैं उठकर चलने लगी तो उन्होंने कहा, "तुम्हारी रश्मि दीदी नहीं चलेंगी क्या?" रश्मि दीदी ने एकाएक उनकी ओर देखा, "ये किस संबंध से कह रहे हैं?"

"मित्रता के संबंध से, मैं तुम्हें बहुत चाहता हूं, रश्मि, ये तृप्ति गवाह है तुम्हारे प्रति मेरी चाहत की." रश्मि दीदी चौंक उठी थीं, परंतु स्वर को संयत करते हुए उन्होंने कहा, "मैं भी चाहती हूं आपको, उतना ही जितना तृप्ति. . ." और उनकी शेष बात मुंह में ही रह गयी थी, क्योंकि मनु भैया ने उनके मुंह पर अपना हाथ रख दिया था और विक्षुब्ध स्वर में बोले उठे, "नहीं रश्मि, तृप्ति बहन है मेरी. तुम्हारे लिए वैसी चाहत नहीं मेरे मन में, कभी हो भी नहीं सकती. वैसा कुछ मत कहना तुम, कभी मत कहना तुम!"

मनु भैया के जाने के बाद मैं मन-प्राण से पढ़ाई में जुट गयी. रश्मि दीदी ने हॉबी कोर्स में प्रवेश ले लिया. वह स्वयं को सुबह से रात तक व्यस्त रखने का बहाना करतीं परंतु उनकी दृष्टि से जैसे कुछ खो गया था. वे पहले से अधिक गंभीर रहने लगी थीं, उनकी आंखों की गहरी नीली पुतलियां कुछ ढूंढ़ती-सी लगतीं. मेरी परीक्षा समाप्त हो गयी और परिणाम भी आ गया. मुझे एम. बी. बी. एस. में प्रवेश मिल गया था. पापा बहुत खुश थे, उन्होंने मुझे ढेर-से उपहारों से लाद दिया. मम्मी ने अपनी बहुमूल्य पोशाकों का मेरे आगे ढेर लगा दिया, चाहे जो ले ले. रश्मि दीदी ने मेरे गले में बाहें डालकर मेरे कपोल चुंबनों से भर दिये. . .और ये चुंबन मेरे लिए पापा के उपहारों और मम्मी की खूबसूरत साड़ियों के अंबार से कहीं ज्यादा कीमती थे, क्योंकि मैं वास्तव में रश्मि दीदी की ही संतान थी. एक ऐसा पौधा जिसका बीज पापा-मम्मी ने डाला था, पर जिसके अंकुरित होने से लेकर आज तक उसकी देख-भाल रश्मि दीदी ने की थी!

तभी अचानक एक दिन मनु भैया का आगमन हुआ. अगले दिन राखी का त्यौहार था और उसके बाद मुझे छात्रावास चले जाना था. तय हुआ कि कल का दिन धूमधाम से मनाया जाये. मम्मी ने पहले ही राखियां मंगवाकर रख ली थीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनु भैया इस आयोजन से अनजान थे और रश्मि दीदी घबराई हुई थीं. अगले दिन बड़ी सुबह मम्मी ने मनु भैया को झंझोड़कर उठा दिया और नहाने को कहने लगीं. मनु भैया आज्ञाकारी पुत्र की तरह उठकर नहा-धोकर आये और डाइनिंग टेबल पर विराजमान हो गये. "क्या खास त्यौहार है आज भई, जो सुबह-सुबह हंगामा हो रहा है."

मम्मी ने टेबल पर केसर चावल और राखियां लाकर रख दीं और हमें आवाज लगाने लगीं. पापा भी टेबल पर ही आकर बैठ गये. मनु भैया ने एक क्षण राखियों की ओर देखा और फिर जैसे एकाएक उन्हें सब याद आ गया हो, वे खिल-कर बोल उठे, "आज रक्षाबंधन है ना!"

"हां; मम्मी ने सस्नेह उत्तर दिया.

"पापा, याद है, आपको, बचपन से मैं मां से कितनी जिद करता था कि मैं भी राखी बांधूगा, मुझे भी बहन चाहिए." पापा मुसकरा दिये, "हां, सब याद है मुझे. पर अब तो तुम दो-दो राखियों के अधिकारी हो. मनु भैया ने एक क्षण पापा की ओर देखा और फिर सामने से आती मुझे और रश्मि दीदी को. बात का अर्थ समझ आते ही वे तमतमाये से उठ खड़े हुए, "अब नहीं मानता मैं ये सब, एकदम वाहियात!" . . .और अपनी कुर्सी धकियाते वह सबको वहीं छोड़ सीधे अपने कमरे की ओर चल दिये. "मनु कहां जा रहे हो तुम? क्या तुम सब तहजीब भूल गये?" पापा का स्वर उठा था.

"तहजीब तो आप भूले हैं पापा. मुझे मां से मिलने जाना है. कितनी परेशान होगी वे. आज के दिन आपने उन्हें. . ."

आगे के शब्द अनकहे ही कह दिये गये थे. गुस्से से कांपते पापा बिना कुछ खाये गाड़ी लेकर चले गये.

उनके जाने के बाद घर में सन्नाटा छा गया. रश्मि दीदी को लगा, इस सब होने की तह में उनका अस्तित्व है. और वह दोनों बांहों में मुंह छिपा सिसकने लगीं. ममी स्तब्ध-सी एक ओर खड़ी थी और मैं सोच रही थी, अब मुझे क्या करना है. तभी मनु भैया बाहर आये. सबके बुझे हुए चेहरे देख कुछ क्षण वे अपराध-बोध से ग्रस्त खड़े रहे. फिर धीमे स्वर में बोले, "मैं मां के पास जा रहा हूं. दोपहर तक आ जाऊंगा." एकाएक न जाने कैसे मेरे मुंह से निकल गया, "भैया, क्या मैं भी चलूं." मनु भैया ने मेरा हाथ सहलाते हुए स्नेह से मेरी ओर देखा और बोले, "नहीं तृप्ति, तुम रश्मि और मम्मी के पास रहो. मैंने सबका मन दुखाया है." और तभी एक आश्चर्यजनक घटना हुई. मनी ने रुंधे कंठ से कहा, "मनु, रश्मि तुम्हारी बहन न सही पर तुम्हारा उसका एक-साथ रहने का तो संबंध है. क्या आज तुम तृप्ति और रश्मि को अपनी मां से मिलवाने नहीं ले जाओगे? ऐसी मां के दर्शन इन दोनों के लिए वरदान होंगे."

"और आप. . .?" मनु भैया ने कृतज्ञता से झुकते हुए मम्मी से पूछा. उन्होंने धीरे से अपनी आंखों की कोरें पोंछ लीं, "त्यौहार के दिन खाली घर अपशकुन होता है. तुम होकर आओ. मैं तुम्हारे लिए खाना तैयार करुंगी."

मेरी तैयारी पूरी हो चुकी थी. अगले दिन सुबह ही मुझे अपने छात्रावास में चले जाना था. रात को रश्मि दीदी दूध के गिलास लेकर मेरे पास आयी. एक गिलास मेरी टेबल पर रखकर वे बोलीं, "ये दूध पी ले और ये मनु भैया को दे आना." मैं झुंझला गयी, "क्या है दीदी, मुझे अपने सामान को चैक करना है, छूट गया तो? तुम तो खाली खड़ी हो, तुम ही क्यों नहीं दे आतीं." रश्मि दीदी एक क्षण ठिठकीं और फिर चुपचाप गिलास लेकर चली गयीं. सामान चैक करते-करते अचानक मुझे याद आया, मेरा शब्दकोश मनु भैयावाले कमरे में रखा रह गया था. मैं एकदम भागती हुई सी मनु भैया के कमरे में पहुंची और धड़ाक् से दरवाजा खोल दिया. मैं जड़ रह गयी. . .रश्मि दीदी मनु भैया की बाहों में जकड़ी हुई थीं और मनु भैया के होंठ. . .

उस रात मैं एक पल भी सो नहीं पायी. लगता था जैसे रीढ़ की हड्डी में दर्द की लहर शीत तरंग-सी ऊपर-नीचे आ रही है, और मैंने रात बेचैनी में करवटें लेते हुए काट दी. सुबह मां ने जल्दी उठने को कहा और फिर घर भर में मेरे जाने के आयोजन की व्यस्तता फैल गयी. रश्मि दीदी का चेहरा पीले सूरजमुखी-सा हो रहा था. उन्होंने एक बार भी मेरी ओर नहीं देखा था. जब मैं जाने लगी उनकी आंखों में आंसू छलछला उठे और उन्होंने मुझे कसकर अपने में भींच लिया. . .जैसे कोई मुझे उनसे छीन रहा हो और वह ऐसा होने देना नहीं चाहती हों!"

"आज मैंने पापा को कहीं अधिक लज्जाजनक स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है. अब उनका बेटा, उनकी पत्नी की बेटी से उनके सामने विवाह करेगा. मैं जीत गया!"—प्रतिशोध की नींव पर बने एक प्रेम-महल में पुरुष और स्त्री के संवेदन और सरोकारों को उजागर करती अक्तूबर, 1984 की 'युवा लेखन कहानी प्रतियोगिता' की पुरस्कार विजेता कहानी—

मनु भैया मुझे और पापा को जो मेरे साथ जा रहे थे, स्टेशन तक छोड़ने आये. पापा रास्ते में पढ़ने के लिए कोई पत्रिका लेने गये तो मनु भैया ने कहा था, "तू मेरे और रश्मि के बीच एक मजबूत कड़ी की तरह है तृप्ति. ये कड़ी टूट गयी तो हम दोनों बिखर जायेंगे. तू सदा रश्मि के लिए मेरी चाहत की गवाह रहना. हमने कोई अपराध नहीं किया."

दिन बीतते गये. छात्रावास में आकर कुछ दिन मैं अनमनी-सी रही, पर शीघ्र ही कालेज की व्यस्त दिनचर्या ने मुझे वहां के जीवन का अभ्यस्त बना दिया. एक दिन कालेज से कमरे पर आयी तो देखा, एक मोटा-सा लिफाफा दरवाजे से अंदर डाला पड़ा था. खोलकर देखा, रश्मि दीदी का पत्र था. पत्र बहुत लंबा था. . .

'तृप्ति, मैं तेरे समक्ष अपराधिनी हूं, एक ऐसे कृत्य की जो मुझे कभी नहीं करना चाहिए था. मनु को दोष नहीं दूंगी मैं. उसकी चाहत एकतरफा नहीं, और न ही उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मुझ पर कभी जबरदस्ती की है. तुम्हारे सामने ये स्वीकार कर आज मेरा मन कुछ शांत हो गया है. एकांत में मैं इस कृत्य के लिए स्वयं को कितना ही धिक्कार लूं, मनु के सामने आने पर खुद पर नियंत्रण नहीं रहता मुझे. उसकी आंखों में न जाने कैसी चुंबकीय ज्वाला धधकती है कि मैं सहज ही समर्पण कर देती हूं. तुम मुझसे बहुत छोटी हो, पर तुम्हारे समक्ष इस सत्य को स्वीकारने में मुझे कोई लज्जा नहीं. शायद ये पढ़कर तुम भी मुझसे घृणा करने लगोगी. . .पर न जाने क्यों मुझे विश्वास है कि तुम ऐसा नहीं करोगी. पत्र का उत्तर देना, अन्यथा मैं समझूंगी मेरा विश्वास निरर्थक था. हां, मैंने यहां एक प्राइवेट फर्म में नौकरी कर ली है.

वर्ष पर वर्ष बीतते गये. मैडिकल में मेरा यह अंतिम वर्ष था. पढ़ाई में मैं पूरी तरह व्यस्त थी कि एक दिन कमरे पर पहुंची तो देखा मम्मी-पापा वहां आये हुए हैं. ममी बुरी तरह घबरायी हुई थीं. मैंने किसी दुर्घटना का अनुमान लगाते हुए पूछा, "क्या बात है मम्मी?" उत्तर पापा ने दिया, "रश्मि न जाने कहां चली गयी है. कल से उसका कोई पता नहीं. तुम्हारी मम्मी को विश्वास था कि वह यहां आयी होगी, इसलिए हम यहां देखने चले आये. पर पता चला वह यहां भी नहीं." अब तक ममी का धीरज बांध तोड़ चुका था. रोते हुए बोलीं, "कुछ दिन से उसे न जाने क्या हो गया था. रिश्ते आ रहे थे. पर उसने साफ मना कर दिया.

अगले दिन पापा-ममी घर वापस चले गये. मैंने भी कुछ दिन की छुट्टी ले ली थी और मनु भैया भी घर आ गये थे. हर संभव स्थान पर हमने रश्मि दीदी को तलाश किया परंतु वे कहीं नहीं मिलीं. उनके पिता मृत्यु से पूर्व विदेश स्थित अपनी सारी संपत्ति पुत्री के नाम कर गये थे. वहां स्थित मकान पर भी फोन करके पुछवाया, पर पता चला वह वहां नहीं थी. उधर मम्मी का स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जा रहा था. थक-हारकर हमने अपनी कोशिशें छोड़ दीं और किसी चमत्कार की आशा में बैठ गये. छात्रावास जाने से पहले एक दिन रात को मनु भैया मेरे कमरे में आये और बोले; "तृप्ति, मुझे तुमसे कुछ कहना है. मैं आज तक एक बात सबसे छिपाता रहा, पर आज तुम्हें बता रहा हूं. रश्मि उस दिन मेरे पास आयी थी. मुझसे कहने लगी—'मनु मेरे विवाह की बात हो रही है. मैं अब और प्रतिरोध नहीं कर पाऊंगी. तुमसे शक्ति मांगने आयी हूं.' उस दिन हमने मंदिर में जाकर विवाह कर लिया. मां पहले तो विरोध करती रही पर मेरे हठ के आगे उन्हें झुकना पड़ा. अगले दिन रश्मि यह कहकर कि घर वापस जा रही हूं, वहां से चली गयी. . .और फिर मुझे पता चला कि वह घर नहीं पहुंची. मैं स्वयं आश्चर्य में हूं कि वह आखिर कहां चली गयी. उसके अचानक इस तरह बिना कुछ कहे लुप्त हो जाने से मेरा मस्तिष्क जैसे निष्क्रिय हो गया है. कहीं उसके साथ कोई दुर्घटना हुई होती तो इतनी भाग-दौड़ के बाद पता तो चल ही जाता. फिर वह गयी कहां!" कहते-कहते मनु भैया फूट-फूटकर रो उठे. मैं स्वयं अपने नियंत्रण में नहीं रही.

▣ व्यंग्यचित्र : चंदर

एम. बी. बी. एस. पूरा करने के पश्चात मैं वहां कालेज में एम. एस. करने लगी. एक दिन अस्पताल में काम कर रही थी कि एक नर्स ने आकर कहा, "मैटर्निटी वार्ड में एक नयी पेशेंट आयी है. आपके लिए पूछा है." मैंने वार्ड में प्रवेश किया तो मेरे पांव जैसे जमीन छोड़ गये और चक्कर खाकर गिरते-गिरते मेरे हाथ में कमरे का दरवाजा आ गया. सामने बैड पर मेरी अपनी रश्मि दीदी लेटी थीं. उनका चेहरा एकदम पीला निर्जीव लग रहा था, आंखें बंद थीं. इससे अधिक मैं कुछ नहीं देख पायी. मेरी आंखें आंसुओं से धुंधला गयी थीं. मैंने स्वयं को किसी प्रकार नियंत्रित किया और दीदी के बैड पर जाकर बैठ गयी. आहट पर रश्मि दीदी ने आंखें खोल दीं. मुझे सामने देख उनकी निर्जीव आंखों में एक गहरी-चमक आयी और विलीन हो गयी. उन्होंने अपनी बाहें फैला दी. मुझे जैसे रेगिस्तान में अमृत का सरोवर दिख गया हो. मैं उनकी बांहों में सिमट गयी और हम दोनों के सयंम का बांध टूट गया. देर तक इसी प्रकार लिपटे रहने के पश्चात अचानक रश्मि दीदी के मुंह से एक गहरी आह निकल गयी और चेहरे पर तीव्र पीड़ा की रेखाएं खिंच आयीं.

मैंने तुरंत ड्यूटी नर्स को बुलाया और उन्हें आपरेशन थियेटर में ले जाने को कहा. दो घंटे के पश्चात नर्स ने बाहर आकर सूचना दी—'लड़का हुआ है.' और मैंने अपनी आंखें मूंद ली. दो बूंद पानी चुपचाप गालों पर ढुलक गया. रात देर तक दीदी के पास बैठने के बाद मैं कपड़े बदलने अपने कमरे पर आयी. फिर सोचा, दीदी सो तो गयी थीं, अब मैं भी यहीं आराम कर लेती हूं. कल जरूरत का सब सामान लेकर वहां जाऊंगी.

सुबह न जाने क्या बजा होगा, अचानक दरवाजा बहुत तेज पीटने की आवाज से मेरी नींद खुली. हड़बड़ाकर बाहर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयी तो देखा ड्यूटी नर्स खड़ी है. अस्त-व्यस्त सांसे समेटते हुए वह बोली, "आपकी बहन न जाने कहां चली गयी हैं. वहां बैड पर यह पत्र पड़ा था..."

फिर बोली, "बच्चे का क्या करना है?"

"क्या? मेरा मुंह खुला रह गया, "बच्चा यहीं है?"

"जी हां." नर्स ने कहा. उन्हीं कपड़ों में लगभग दौड़ती-भागती-सी मैं अस्पताल पहुंची और बच्चे को गोद में उठा लिया. बच्चा सो रहा था. वापस कमरे पर आकर उसे लिटा दिया और पत्र खोलकर पढ़ने लगी. लिखा था...

'आज एक आखिरी पन्ना इस डायरी का और लिख रही हूं मैं... बिना किसी संकोच के, बिना किसी शर्म के. मनु ने मुझे चाहा था और मैंने उसे. इसीलिए किसी और के होने की बात से ही घबराकर मैं मनु के पास चली गयी थी. परंतु उस रात जब हम अपने जीवन के मधुरतम क्षणों को जी रहे थे, मेरी संपूर्ण चेतना ने सुना, मनु कह रहा था—'रश्मि, तुम्हें मैंने मां के प्रति पापा के अत्याचारों का प्रतिशोध लेने के लिए चाहा था. मां ने बताया था कि पापा ने उसे अत्यंत लज्जाजनक स्थिति में घर से निष्कासित किया था. आज मैंने पापा को उससे भी अधिक लज्जाजनक स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है. अब उनका बेटा, उनकी पत्नी की बेटी से उनके सामने विवाह करेगा. मैं जीत गया, मेरा प्रतिशोध पूरा हुआ!'... और मेरी संपूर्ण चेतना जैसे एक झन्नाटे के साथ आकाश से धरती पर आ गयी थी, ऐसी धरती पर जहां चारों ओर दलदल थी. प्रतिशोध की नींव पर बने प्रेम के उस महल में मेरा दम घुटने लगा और अगली सुबह ही मैं वापस आने के लिए वहां से चल दी थी. परंतु वहां से घर तक के रास्ते में मेरी सोचों ने मुझे समझा दिया कि अब मैं इस लायक नहीं रही कि घर जा सकूं. मुझे जन्म देनेवाला व्यक्ति विदेशी था परंतु उसकी नस-नस में भारतीय संस्कृति रच-बस गयी थी. मम्मी के साथ भारत का पर्यटन करते हुए उन्होंने एक दुल्हन का लंहगा-चुनरी बड़े चाव ने खरीदकर मम्मी को देते हुए कहा था—'हमारी बेटी शादी के समय इसे ही पहनेगी. उसका दूल्हा घोड़ी पर चढ़कर आयेगा, फेरे होगें और हम उसे डोली में बिठाकर विदा करेगें.' ये बात एक बार मम्मी ने मुझे बतायी थी और वह परिधान भी दिखाया था. मैंने सोचा, मनु किसके दरवाजे पर घोड़ी पर बैठकर जायेगा? डोली कहां से उठेगी? क्या अपने प्रेम के लिए मुझे अपने ही मम्मी-पापा का बंटवारा कर देना होगा? और फिर मैंने निर्णय लिया, अपने जीते-जी ऐसा नहीं होने दूंगी मैं. मैं अपने पिता के वकील से मिली, जो मेरी आवश्यकताओं की देखभाल के लिए नियुक्त थे. नौकरी तो मैं पहले भी कर रही थी, उनकी सहायता से वहां भी मुझे अच्छी नौकरी मिल गयी. मैंने सोचा, अपने जन्मदाता द्वारा दिया गया विदेश स्थित वह घर ही अब मुझे शरण दे सकता है. वहां जाने की पूरी व्यवस्था उन वकील साहब ने कर दी. पर तभी मेरे अंदर एक नयी अनुभूति की कोंपल उगने लगी. पता लगा, मैं मां बननेवाली हूं, अपने मनु के बच्चे की मां. और तब मैंने अनुभव किया कि

▣ अनीता मनोचा
जन्म : सन् 1958
शिक्षा : एम. ए. (हिंदी)
संप्रति : शोध छात्रा
—पहली कहानी 'आते हुए लोग' के अंतर्गत सारिका : 1 फरवरी, 83 में प्रकाशित हुई.

मनु के प्रति मेरी चाहत उतनी ही गहरी थी, उतनी ही मीठी. मैंने यहीं भारत में रहकर बच्चे को जन्म देने का निर्णय किया. मनु ने कभी मुझसे कहा था—'तृप्ति हमारी चाहत की गवाह भी है और हमारे मध्य की कड़ी भी.' अब अपनी प्रथम चाहत की यह उपज, यह शिशु मैं तुम्हें सौंप रही हूं. मुझमें इतना साहस नहीं कि मैं कल इसे बता सकूं कि तुम्हारी नानी तुम्हारे दादा की पत्नी हैं. इसी से इसे तुम्हारे संरक्षण में छोड़कर जा रही हूं. मेरे विदेश जाने का सब इंतजाम हो चुका है. आज रात ही मैं इस देश को, इस धरती को छोड़ दूंगी. ईश्वर तुम्हें सुखी रखे!'

पत्र मैं एक ओर रख देती हूं. अचानक बच्चा रो उठता है. इतने समय तक अपनी उपेक्षा को वह सह नहीं पाया. उसे गोद में उठा लेती हूं. मेरे शरीर की ऊष्मा में निश्चिंत होकर सो गया है यह, मेरी सोचों से अनजान! मेरी आंखों के आगे बारी-बारी से मनु भैया और रश्मि दीदी के चेहरे आये और विलुप्त हो गये. मैं झुक कर नन्हे शिशु के चेहरे में जाना-पहचाना कुछ तलाशने लगी. एकाएक मेरे मन में विचार आया—अपने जन्मदाताओं से इतनी दूर यह नन्हीं-सी जान मेरे अजनबी में कैसे परवान चढ़ेगी. शिशु कुलबुलाता है और फिर अपनी आंखें खोल देता है. वह एकटक मेरी ओर देख रहा है. मुझे भी अपनी ओर देखते पाकर वह मुस्करा उठता है. मुझे लगता है, जिस पहचान को इतनी देर से मैं ढूंढ रही थी, उसका सिरा मेरे हाथ में आ गया है. मैं बच्चे को हौले-से हाथों में उठाकर उसके नन्हे गुलाबी होंठ कोमलता से चूम लेती हूं—'तू अजनबी नहीं है. तुमसे तो मेरी पहचान तब की है जब तू अपनी मां की कोख में भी नहीं आया था. तू मेरे मनु भैया और रश्मि दीदी की उस चाहत की उपज है, जिसकी गवाह केवल मैं थी, और जिसका प्रमाण अब तू है.' मुझे लगता है रक्त के अतिरिक्त कोई अन्य द्रव भी प्रवाहित हो रहा है. दिल के पास कहीं कोई भीगी-सी अनुभूति होती है. मैं बच्चे को कसकर अपने सीने में भींच लेती हूं! □

● कक्ष सं. 3, अमर ज्योति छात्रावास, पश्चिमी कचहरी मार्ग, मेरठ—250001.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▣ असमिया कहानी

अरविंद चालिहा परिवार का गांव भ्रमण

चित्रलता फुकन

गांव देखने का एक शौक कविताकुंज के मन में बहुत दिन से पनपा हुआ था. कविताकुंज ने गांव नहीं देखा था. एक छोटे से शहर में वह जन्मी थी और एक बड़े शहर के मशहूर कालेज में पढ़ी-लिखी थी. होस्टल में रहते समय गांव के अमीर लोगों की अनेक शौकीन लड़कियों से मिली थी. वह स्वयं भी चाय-उद्योगपति की एकमात्र कन्या होने के नाते अपने शौक के लिए अपर्याप्त रुपये-पैसे खर्च कर सकती थी. कालेज में पढ़ते समय ही एक दूसरे शहर के एक अमीर घराने के युवक अरविंद चालिहा के साथ उसकी शादी हो गयी थी. शादी के ठीक पांच साल बाद ही अरविंद राज्य विधान सभा के सदस्य चुने गये थे. उसके बाद वह भी महिला समिति, बाल सभा आदि अनुष्ठानों के साथ जुड़ गयी थी. इसीलिए अरविंद चालिहा उसे गांव दिखाने ले गये.

अरविंद चालिहा ने मोटरकार साफ करवाकर पैट्रोल भर लेने के लिए ड्राइवर को निर्देश दिया. उद्धेश्य, प्राय: पच्चीस मील दूर का नेमू नदीयाल गांव भ्रमण. नदी तटवर्ती इस गांव के भलुकादास उनकी पार्टी के एक अच्छे कार्यकर्ता रहे. चुनाव के समय उन्हें जिताने के लिए उन्होंने जीतोड़ मेहनत की थी और गांव के नौजवानों को समझा-बुझाकर चुनाव प्रचार के काम में लगाया था. गांव में उन्हीं की हालत कुछ अच्छी है. उनके चुनाव क्षेत्र में यही सबसे पिछड़ा हुआ गांव है. लोगों की हालत अच्छी न होने पर भी वे भोले-भाले थे. यही गांव कविताकुंज को दिखाना ठीक होगा. अरविंद चालिहा ने सोचा. इसी गांव से कविता को असम के गांवों का सही चित्र मिल जायेगा. उन्होंने यात्रा आरंभ कर दी. साथ गयीं उनकी दस-बारह साल की कन्याएं रेबा और जबा.

धूल भरा सुदीर्घ पच्चीस मील रास्ता तय करने के पश्चात वे दिखो नदी के किनारे बसे उस गांव में जा पहुंचे.

हमारे जन-प्रतिनिधि जनता के पास जायें या न जायें मगर जन-प्रतिनिधियों तक पहुंचे 'जन' की आशा-आकांक्षा का क्या हश्र होता है--प्रस्तुत है इसी सामयिक सच को उजागर करती एक सशक्त रचना--

गांव के छोर पर ही ड्राइवर के जिम्मे गाड़ी रख वे भलुकादास का घर खोजते हुए बढ़ने लगे. चुनाव के समय हालांकि वे भलुकादास के घर गये थे पर अब कुछ याद नहीं है.

अरविंद चालिहा भलुकादास के घर का निरीक्षण करते हुए बढ़ रहे थे. एक ही किस्म की दो कोठरीवाली झोपड़ियां, एक ही किस्म के रास्ते. बाढ़ के पानी से दीवारों के आधे हिस्से तक पानी का गंदला रंग पैठ गया है. लाल मिट्टी से लिपा हुआ चबूतरा--फूंक मारकर भोजन कर सकने लायक साफ-सुथरा. नदी के कटान से ढहता जा रहा है गांव, नदी नजदीक आती जा रही है. नदी के कगार पर ही बसा है यह गांव. जबा ने पीछे-पीछे आ रहे बच्चों की टोली में से एक ग्यारह वर्षीय लड़की से पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

"बुधवारी."

"पढ़ती हो?"

वह कपड़ों से मुंह ढांपकर खिल-खिलाकर हंस पड़ी.

एक दूसरी लड़की बोली, "बताती क्यों नहीं?"

वह फिर खिल-खिलाकर हंसी.

साथ के पेसन ने कहा, "जब मन करता है जाती है."

"क्यों?" जबा ने आश्चर्य प्रकट किया.

"उसकी मां गांव घूमने जाती है न."

"रोज थोड़े ही जाती होगी?"

"रोज नहीं जायेगी तो खिलायेगा कौन?"

रेबा समझ गयी और जबा से बोली, "तू समझी जबा? तू जो समझ रही है वह नहीं है. गांव घूमने का मतलब है···" कहकर वह उसके कान के पास अपना मुंह ले जाकर हल्के से फुसफुसाई, "भीख मांगने."

अरविंद चालिहा ने उनकी बातों का सिलसिला बदलने के लिए ही उस लड़की से पूछा, "बुधवारी, तुम्हारा घर कौन-सा है?"

"भलुका ताऊ जी के घर से कुछ दूर आगे है."

"अच्छा! तब तो हम तुम्हारे साथ जायेंगे. क्यों?"

कुछ दूर जाकर कविताकुंज ने कहा, "अजी सुनते हैं, इस लड़की को समझा-बुझा लेने से अच्छी लड़की बन जायेगी. क्या वह हमारे साथ जायेगी? पूछूं."

"गरीब की अच्छी लड़की देखते ही काम करने वाली बनाकर ले जाना चाहोगी तो कैसे होगा?"

"एक बात कह रही हूं."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

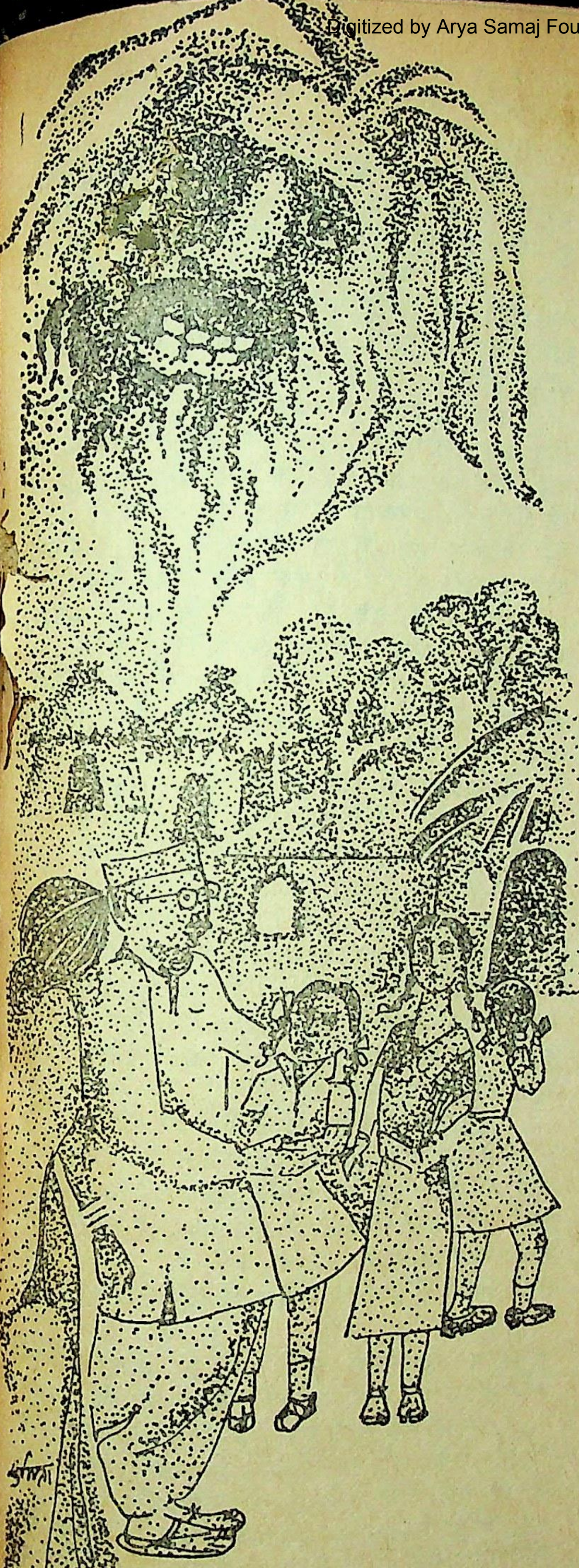

"कहना ही नहीं, यह तो तुम्हारी आदत बन चुकी है."

"घर गृहस्थी कैसे चलती है आपको क्या पता? काम करने वाली अच्छी न हो तो कितनी दिक्कत होती है."

"क्या इसीलिए आगे-पीछे का कुछ न जानकर जिसे-तिसे नौकरानी बनाकर ले जाने की फिक्र करनी चाहिए?"

मलुकादास और उनकी पत्नी उन्हें अगवानी कर ले जाने के लिए आगे गये. उन्हें बांस की चटाई पर बिठाया और चाय-तांबूल का इंतजाम करने में जुट गये.

एक-एक करके अरविंद चालिहा से मिलने के लिए आये लोगों से घर भर गया. वे भी दोनों हाथ जमीन पर फैलाये प्रणाम कर बैठ गये. कविताकुंज ने अनुभव किया, आंतरिक विनम्रतायें भी कभी-कभी उबा देती हैं. हालांकि वह इस तरह की विनम्रताओं से परिचित नहीं थी.

इस बार सभी लोग बाहर निकल गये और आंगन में इकट्ठे होकर गुपचुप बातें करने लगे. शायद वे उनसे कुछ निवेदन करेंगे. अरविंद ने सोच लिया. लोगों के बाहर जाने से सुविधा देख जबा ने मम्मी की ओर देखकर पूछा, "मम्मी, क्या ये लोग हमें इसी तरह प्रणाम करते रहेंगे?"

मम्मी के कुछ कहने से पहले ही अरविंद ने जबा को समझाया, "तू समझी नहीं, ये लोग हमारा सम्मान कर रहे हैं. तुम लोग क्या बड़ों को हाथ जोड़कर नमस्ते नहीं करती?"

"वे हमारे जैसा क्यों नहीं करते?"

"ये लोग तुम लोगों से अधिक विनयी हैं."

"क्या ऐसा करने से अधिक विनम्रता प्रकट होती है?"

"हां, यहां के लोग बड़े सरल हैं."

मलुकादास की पत्नी भीतर से निकली और फिर से हाथ जोड़कर उन्हें भीतर चलने के लिए विनती की. वे भीतर घुसे. 'पिठागुड़ी' (भूने हुए चावल के आटे से बना एक प्रकार का नाश्ता) से भरी कटोरी उनके सामने रखकर मलुकादास की पत्नी ने पुनः साष्टांग प्रणाम किया. नाश्ता कर वे बाहर निकले तो अरविंद ने देखा कि लोगों से घर भर गया है. वे अरविंद को 'नामघर' (मंदिर) ले जाना चाहते हैं. वहां वे अपनी मांगें रखेंगे. अरविंद को जाना पड़ा. नामघर के फाटक पर पैर रखते ही औरतें मंगल ध्वनि गाने लगीं. अरविंद हठात् कब नामघर की दहलीज पर घुटने टेक प्रणाम करने लगा था, कविताकुंज को पता ही नहीं चला. औरत-मर्द सभी मंगलगान कर अरविंद की दीर्घायु की कामना करने लगे. रेबा और जबा एक-दूसरे को देखने लगीं और अपनी मम्मी की तन्मयता तोड़ती हुई रेबा ने कहा, "मम्मी, ये लोग पापा को बहुत चाहते हैं ना? मगर मम्मी, क्या इन लोगों को पापा कुछ दे सके हैं?"

कविताकुंज क्या जवाब दें सोच न पायीं तो बोलीं, "तुम्हारे पापा ही जानें. पापा से पूछ लेना."

नामघर के अहाते में अरविंद की अध्यक्षता में सभा बैठी. प्रस्ताव सिर्फ एक ही है—जैसे-तैसे एक बांध का प्रबंध होना चाहिए. एक बांध बन जाय तो भले ही वे मांगकर खा लेंगे पर शांति से तो रह सकेंगे. कार्तिक महीने में ही किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भंडार-घर में एक दाना खुद्दी भी नहीं है, चार-छह महीने गुजारने लायक किसी के पास खेत भी नहीं हैं. ऊपर से बाढ़ का प्रकोप. इन्हीं बातों को वे अरविंद चालिहा को सहज भाव से समझा नहीं पा रहे हैं.

कविता, रेबा और जबा को इस सभा में कोई मजा नहीं मिल रहा है, वे उठ आना चाहती हैं. नदी के किनारे-किनारे घूमना ही अच्छा है. वे उठ आयीं. नदी के किनारे-किनारे जाते-जाते वे बुधवारी के घर तक पहुंच गये.

"बुधवारी, हमें अपने घर नहीं बुलाओगी?" जबा ने कहा.

"हमारे घर क्या देखने आओगी?" बुधवारी बोली.

जबा रुक न सकी. नदी के कगार से वह बुधवारी के साथ उसके घर की दहलीज पर पहुंच गयी. इस बीच सभा समाप्त कर अरविंद भी उन्हें खोजते हुए वहां पहुंच गये. जबा बुधवारी के घर के भीतर पहुंच गयी थी. पीछे-पीछे रेबा और उसकी मम्मी भी गयीं. अरविंद दहलीज तक पहुंचे ही थे कि पीछे से भलुकादास एक श्वास में चिल्ला उठे, "सर, सर, इधर आइये, वहां न जाइये."

"क्यों नहीं जाना चाहिए वहां?" अरविंद ने पूछा.

"वहां एक पागल है." भलुकादास के साथ आये एक आदमी ने कहा, "वही नीलकंठ नाम का नौजवान."

आंखें मूंद दायें हाथ की उंगलियां माथे पर थोकते हुए कुछ याद करके अरविंद बोल उठे, "हां, हां, वह जो नौकरी मांगने आया था?" अरविंद चालिहा सहम गये. मगर उपाय नहीं है, उनका परिवार भीतर घुस चुका था. अरविंद असमंजस की स्थिति में दहलीज पर खड़े रहे. भीतर से किसी ने आवाज दी, "सर, अंदर आ जाइये, अंदर आने में संकोच कर रहे हैं क्या? संकोच करने की कोई बात नहीं है. हां, आपकी अच्छी तरह खातिरदारी कर सकें, हमारी इतनी औकात नहीं है. बैठिए, इस टूटे हुए पीढ़े पर ही बैठिए सर." बातों में स्पष्ट कटाक्ष था. कौन बोल रहा है मालूम नहीं पड़ता. घर के बीच एक अंगीठी में बांस की लकड़ी जल रही है. उसकी रोशनी में घर के चारों कोने दिखाई नहीं देते. पीछे के किवाड़ पर खड़ी है बुधवारी. उसकी मां ने अरविंद को बड़ी विनम्रता के साथ बैठने के लिए कहा. अंगीठी के पास एक पीढ़े पर अरविंद बैठ गये. आग धधकने लगी. उसकी रोशनी में अरविंद ने देखा दीवार से सटे हुए बांस के एक मचान पर कोई सोया हुआ है. अच्छी तरह निरीक्षण कर अरविंद चिहुंक उठे. आदमी नहीं, जैसे भूत हो. दाढ़ी-मूंछों से भरा, लंबे-लंबे बिखरे बाल, बड़ी-बड़ी लाल आंखें.

"आपको अवश्य याद होगा सर, नीलकंठ नाम का एक नौजवान नौकरी के लिए कुछ दिन आपके घर में ठहरा था. भलुका चाचा की सिफारिश पर ही ठहराया था. मैं वही नीलकंठ हूं. अरे नहीं, मैं नीलकंठ नहीं हूं, मैं भूत हूं, नीलकंठ की प्रेतात्मा हूं. इस गांव के लोग मुझे भूत कहते हैं, कुछ लोग कहते हैं मैं पागल हूं. हां, लोग ठीक ही तो कहते हैं— नीलकंठ मर कर भूत हो गया है. मैं एक भूत हूं." कविता कुंज अरविंद चालिहा से चिपक गयी, रेबा और जबा ने भी मम्मी को जकड़ लिया था.

बुधवारी की मां पास आकर बोली, "बाबूजी, क्या करें. एक ही बेटा है यह. पिता के गुजरने के [illegible] यह हालत हो गयी है इसकी. मुंह के आगे कुछ मिल [illegible] तो खा लेता है नहीं तो पड़ा रहता है. मुंह से न जाने क्या-क्या बड़बड़ाता रहता है, वही जाने. गांव वाले कहते हैं, इसका दिमाग खराब हो गया है. कोई-कोई कहता है इसे भूत लगा है. ओझा-गुणी से झाड़-फूंक भी करवाया."

"और क्या उपाय हो सकता है मां, तुम लोगों ने मेरे लिए बहुत कुछ किया. पिताजी ने दुःख-तकलीफ सहकर मुझे मैट्रिक तक पढ़ाया पर पिताजी का दोष इतना ही था कि मैं जितना दे सकता था उससे बहुत ज्यादा वे चाहते थे." नीलकंठ खड़ा हो गया और बोला, "आप लोग क्यों आये हैं यहां? गांव देखने? नेमू गांव के इस अजायबघर में प्रेतात्मा देखने आये हैं? देखिए, जी भरकर देखिए, यह प्रेतात्मा आपका पुश्तों तक पीछा नहीं छोड़ेगी."

उसकी मां उसके पास जाकर मनाने लगी, "बेटा, सांझ का अतिथि साक्षात् दामोदर होता है. अतिथि को कटु शब्द न बोल बेटे."

नीलकंठ हाथ से अपनी मां को एक ओर हटाकर गर्दन झटकाते हुए बोला, "तुम नहीं जानतीं मां, अरविंद चालिहा ने मुझे एक दिन जेल भेजा था और इसीलिए मैं पिताजी को आखिरी समय देख न सका. हालांकि एक दिन के बाद इन्होंने ही मुझे छुड़ा लिया था. कितने दयालु हैं ये." नीलकंठ ने जोर से एक ठहाका लगाया, सारा घर-आंगन झनझना उठा, आग भभककर जल उठी. उजले प्रकाश में नीलकंठ का चेहरा और भी स्पष्ट हो उठा. दाढ़ी-मूछों से भरा जैसे एक भूत हो. नीलकंठ रेबा के पास आकर प्यार से बोला, "रेबा बहन, तुम मुझे पहचानती नहीं?"

"पहचानती हूं, तुम नीलकंठ भैया हो न?"

"नीलकंठ नहीं, नीलकंठ की प्रेतात्मा हूं." उसने फिर ठहाका लगाया. "इस गांव में भी तुम्हारे नाम से मिलती-जुलती और तुम्हारी जैसी ही एक खूबसूरत लड़की थी. उसका नाम था रेवती. अब वह इस गांव में नहीं रही. नौकरी मिलते ही मैं उससे शादी करने वाला था. मगर..."

आग का प्रकाश घटने लगा था, नीलकंठ पीछे मुड़ गया. अकस्मात नीलकंठ के रोने की आवाज सुनाई पड़ी. सारा माहौल बदल गया. लोग एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे. एक नौजवान ने आगे बढ़कर अरविंद से पूछा, "सर, नीलकंठ को जेल क्यों जाना पड़ा था?"

अरविंद चालिहा इस प्रसंग को छेड़ना नहीं चाहते थे. नौजवान अपनी इस बात पर अड़ा रहा. कहा, "नीलकंठ के पिता की बीमारी की खबर मैंने ही उसे पहुंचाई थी, दूसरे दिन उसको आना था. पर यहां हमें पता चला कि उस दिन वह घर न पहुंचकर जेल गया है और उसके दूसरे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

दिन उसके पिता का देहांत हो गया."

"हां, नीलकंठ ने एक गलत काम किया था. पर उसके लिए उसे जेल भेजकर हमने गलती की."

अरविंद चालिहा राजनीति के आदमी हैं, स्थान-काल-पात्र के अनुसार दोष स्वीकार कर लेना जानते हैं.

"गलत [illegible] का मतलब यही न कि वह तीस रुपये किसी से कहे बिना तकिये के नीचे से लेकर घर आना चाहता था, क्योंकि आप लोग उस दिन उसे आने नहीं दे रहे थे. इसलिए कि उस दिन आप लोग सुगंधित चावल और रोहू मछली खरीदकर पिकनिक जाने की तैयारी में थे. उसके पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं थी. उसके बाद दो सौ रुपये की चोरी करने के आरोप में पुलिस द्वारा आपने उसे बीच रास्ते में पकड़वा दिया. वह आप से दो सौ रुपया ही चाहता था क्योंकि उसके पिता बिस्तर पर पड़े छटपटा रहे थे इलाज के बिना." भलुकादास नौजवान के पास आकर बरौरी करने लगे, "अब इन बातों की क्या जरूरत है?"

"एक लड़के की जिंदगी बरबाद हो गयी है जिन कारणों से उसकी जरूरत नहीं है तो किसकी जरूरत है? तुम्हीं ने कहा था—इन्हीं को वोट देना. ये हमारे गांव के लिए सोचेंगे. नौजवानों को रोजगार दिलायेंगे." नौजवान भड़क उठा.

"नीलकंठ ने आपके घर छह महीने तक गुलामी की, इसी उम्मीद पर कि आप उसे कोई नौकरी दिलवा देंगे. नीलकंठ पढ़ने में तेज था, फिर भी जीने के लिए वह सिर्फ एक कानस्टबिल की नौकरी ही चाहता था. आपके घर रहकर उसने दो बार इंटरव्यू भी दिया था. दोनों इंटरव्यू में वह अच्छी तरह पास भी हुआ था. मगर पिता की मृत्यु के बाद जब वह आफिस गया तो पता चला कि उसके इंटरव्यू का कोई रिकार्ड आफिस में नहीं है. इस तरह के अविचारों की कोई मिसाल है? बोलिए सर, आप जवाब क्यों नहीं देते?"

"आफिस की बात मैं नहीं जानता, उसके साथ अन्याय करने के लिए अफसर को मैंने नहीं कहा था. आफिसों में आजकल यह सब रोजमर्रा बातें हैं—रुपया-पैसा देकर उन्हें खुश नहीं किया गया तो कोई काम नहीं होता."

"क्या आपने भलुका भैया को वचन नहीं दिया था कि नीलकंठ को किसी न किसी नौकरी में लगवा देंगे?"

"अब भी वचनबद्ध हूं मैं."

"मगर आपने नीलकंठ को जेल क्यों भिजवाया?"

अरविंद इस बार बोले, "इसके लिए मैं जिम्मेवार हूं, मैंने ही उसे पुलिस के हवाले किया था. मैं अपनी गलती मानता हूं. अब मैं इसे आदमी बनाने की कोशिश करूंगा."

नौजवान ने मुंह फेर लिया.

"नीलकंठ को आदमी बनाने की कोशिश करेंगे? किसने कहा? हा-हा-हा. झूठी बात." नीलकंठ के ठहाके की गूंज से सारा परिवेश कांप गया.

"नीलकंठ ने जो कुछ खोया है उसे आप कभी वापस नहीं दे सकेंगे."

"क्यों? क्यों नहीं दे सकेंगे?" कविताकुंज ने पूछा.

"रेवती नाम की एक लड़की के साथ नीलकंठ का बचपन से ही प्यार था. नौकरी का इंतजाम होते ही उससे शादी करने की बात थी. किंतु रेवती के माता-पिता को जब यह मालूम हुआ कि नीलकंठ जेल गया है तो उन्होंने उसे चोर समझकर रेवती के साथ हुई मंगनी तोड़ दी और उस पार के एक गांव में जबरन रेवती की शादी कर दी गयी."

नीलकंठ हड़बड़ाकर भीतर से निकल आया और कविताकुंज के समीप धम्म के गिरकर दहाड़ें मारमारकर कहने लगा, "कहिये, सिर्फ एक बार कहिये, रेवती को वापस ला देंगी? रेवती कहां आयेगी? मैं चोर जो हूं."

कविताकुंज अब और रुक न सकी. वह फफकने लगी, रोते-रोते उनकी आंखें फूल गयीं. रूमाल गीला हो जाने के कारण आंखें पोंछने लायक न रहा. रेवा और जबा भी रोने लगीं. अरविंद अंधेरे में मुंह छुपाये बरामदे में खड़े रहे. नीलकंठ हठात खड़ा हो गया और आंखें तरेरकर सिर झटकते हुए कहता गया, "हत्यारों की आंखों में आंसू? नीलकंठ भले ही हत्यारों को क्षमा कर दे मगर उसकी प्रेतात्मा. . ."

मोटरकार का ड्राइवर परिवारजनों को ढूंढते हुए वहां आ पहुंचा और कहा, "साहब, मोटरकार जहां रखी हुई है वहां एक बड़ी-सी दरार पड़ गयी है. शायद वह जगह नदी में धंस जायेगी. जल्दी कीजिये. कार कुछ दूर धकेलकर ले जानी होगी. कुछ लोग भी चाहिए."

चालिहा से पहले ही गांव के कुछ लोग गाड़ी धकेलने के लिए ड्राइवर के साथ चल दिये. वे विदा लेने के लिए भीतर घुसे. नीलकंठ की मां आंचल से आंखें पोंछती हुई बुझ रही अंगीठी में लकड़ियां डाल रही थीं. बुधवारी चौखट पर खड़ी दोनों हाथ शरीर से चिपकाये ठंड से बचने की कोशिश कर रही थी. "बुधवारी हम जाती हैं," रेवा और जबा ने कहा.

बीस रुपये का एक नोट बुधवारी की ओर बढ़ाकर कविताकुंज ने कहा, "बुधवारी यह लो, एक फ्राक खरीद लेना." यह सुनते ही बुधवारी पीछे की ओर सरकती-सरकती रसोई घर में घुस गयी. कविताकुंज पुकार-पुकारकर उसे पास न ला सकीं.

शरीर और मन की शक्ति खोये हुए अरविंद और कविताकुंज को लगा जैसे शरीर के बहुत से जीवित अंश मर गये हैं, जैसे अनेक युग, अनेक पथ अतिक्रमण कर वे अवर्णनीय रूप से क्लांत हो गये हैं. □

● अनुवाद : विष्णु कमल डेका

चलते-चलते

मुंशी प्रेमचंद से उनके एक रिश्तेदार ने पूछा, "आपकी सबसे बड़ी अभिलाषा क्या है?" प्रेमचंदजी ने कहा, "भई, यह बात मैंने कहीं लिखी है. मेरी सबसे बड़ी अभिलाषा यही है कि भगवान मुझे मनहूसों से सदैव बचाये रखे. मनहूसियत से मेरा दम घुटता है." □

—सुधा सेठ

आधी दुनिया

रिश्ता शहर से

चमेली जुगरान

इस शहर में रहते-रहते वो अधेड़ उम्र की हो चली थी, पर अभी भी दिल नहीं जुड़ा पायी थी. कारण ये भी हो सकता है कि लगातार यहां रहे नहीं. नौकरी की अदला-बदली. कभी यहां, कभी वहां, फिर बार-बार दिल्ली आना, नये-नये मोहल्लों में मकान की तलाश. दिन भर वो रोती रहती, एक भीड़ भरी महानगरी में बिल्कुल अकेली, जैसे किसी और दुनिया से आयी हो. यहां के लोगों से उसका कुछ भी मेल नहीं खाता. कैसी रूखी उजड्ड बोली है. न किसी की इज्जत, न लिहाज. सब्जी लेने जाओ, जरा मोल-भाव पूछने लगो तो जवाब मिलता है—'जाओ-जाओ आगे बढ़ो. कभी खायी भी है सब्जी!' हर जगह यही हाल है.

वह दूसरे माहौल से आयी है. यह सब करना उसके लिए आसान नहीं है. जब सुना था, उसकी शादी दिल्ली में होगी, कितनी खुश हुई थी. दिल्ली! राजधानी, लाल किला, जामा मस्जिद, कनाट प्लेस. . . ओ मां! मन ही मन नाच उठी थी. उसने कनाट प्लेस घूमना शुरू कर दिया था, कल्पना में हाथ पकड़े ध्रुव के साथ आइसक्रीम खाते हुए दिल्ली की रंगीन सड़कों पर . . . लेकिन उसकी कल्पना की दिल्ली कितनी अलग थी इस दिल्ली से. कोई किसी से बोलता नहीं है, सबको जल्दी है, सबके तेवर चढ़े रहते हैं. सुबह से शाम तक जीने की लड़ाई लड़ते हुए—पानी के लिए लड़ते, राशन के लिए, बस के लिए, कहां नहीं है धक्कम-धक्का. हर कोई क्यू में सबसे आगे होना चाहता है. ध्रुव ने भी तो उसकी कोई मदद नहीं की है, इस नगरी को समझने में.

शायद उसे खयाल ही न आया हो. वो तो कई सालों से रहता आया है यहीं. बस अकेला छोड़ दिया है उसे इस पहेली को समझने. अपने को तो पैदल या रिक्शा करने की आदत थी, अब यहां बस का हिसाब मालूम नहीं पड़ता. कितनी घबराहट होती है, उससे दौड़ा भी नहीं जाता. दौड़ना ही भद्दा लगता है. सोम ने तिरस्कार से कहा था, "भाभीजी, यहां रहना है तो स्मार्ट बनना पड़ेगा."

हीन भावना और लज्जा से उसका रोम-रोम तृप्त हो गया था. स्मार्ट!—तो क्या यहां रहनेवाले सब स्मार्ट हैं? किसी को धक्का देकर आगे बढ़ जाना, किसी की सीट छीनकर उस पर बैठ जाना, दो रुपये की चीज एक रुपये में खरीद लेना स्मार्ट होने के लक्षण हैं तो ये सब उसके सिद्धांत के विरुद्ध है. शायद वो इस तरह कभी स्मार्ट नहीं बन सकेगी. तभी तो ध्रुव भी अधैर्य होकर कह देता था—"तुमसे तो वही चुनिया भली जो लिखना-पढ़ना नहीं जानती पर. . ."

हां ध्रुव, तुम भी ऐसा ही कहकर मेरा मनोबल कम करो, उसने मन ही मन चोट खाते हुए सोचा. क्या तुम्हारा कर्तव्य नहीं है, मेरे पति होने के नाते कि मुझे समझाओ, सिखाओ, थोड़ा समय दो. फिर धीरे-धीरे न जाने कब इस शहर से वह जुड़ गयी थी. शायद बच्चों के कारण. जब वे स्कूल जाने लगे, बस घर के सामने होकर हॉर्न देती. वह दौड़ी-दौड़ी बच्चों को छोड़ने गेट तक जाती. बाद में ड्राइवर भी हाथ हिलाने पर बस को थोड़ी देर और रोक देता था. उनके दोस्त आने लगे—कभी खेलने, कभी टी. वी. देखने, तो कभी पिकनिक-पिक्चर.

उनके आने से जैसे अपने बचपन की रील शुरू से पर्दे पर चलने लगती थी. हालांकि वो करती क्या थी, सिर्फ उनके दोस्तों का खाना-पीना, चाय-पानी ही न. फिर भी उनका आना, हंसना, बोलना उसे अच्छा लगता था. घर जीवंत हो उठता था. शहर की खबरें लाते थे वे. कहां क्या

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर शहर का अपना एक जीने का तरीका होता है. अगर आप उस तरीके को समझ लेते हैं तो शहर आपका दोस्त होता है वरना दुश्मन. प्रस्तुत है शहर के साथ अपने रिश्तों को तलाशती 'आते हुए लोग' शृंखला की पैंतीसवीं कड़ी

हो रहा है, कौन आया, कौन गया. इस बार जमुना में बाढ़ आयेगी. दिल्ली में बीमारी फैलने का डर है. हाय दिल्ली में कुछ हो न जाये. . . बोट डूब गयी. . . बच्चे मरे. उसका दिल भर आता, जैसे वे सब उसके ही बच्चे थे. यहां की हर चीज अपनी और हर दुख अपना क्यों लगने लगा है. लेकिन इस शहर को भी उसका अता-पता है या नहीं, कैसे मालूम हो.

बहुत स्मार्ट नहीं बन पायी है लेकिन काम चला लेती है. अब भी बस के रूट ठीक से मालूम नहीं हैं, सड़कें याद नहीं, अकेले घर से निकलते हुए घबराहट होती है. पर अब ध्रुव की खुशामद करने की जरूरत नहीं है. बच्चे बड़े हो गये हैं, सब बता देते हैं. कितना गर्व और सहारा है इनका. उसे अब होशियार या स्मार्ट बनने की जरूरत ही क्या है जब देखने वाले हैं. कभी कहीं अकेले जाना भी होता है तो ध्रुव और बच्चे कैसे बार-बार समझाते हैं—वहां से बैठना, बस खाली मिलेगी. जब गोल चक्कर आयेगा, उतर जाना. नहीं तो कंडक्टर से पूछ लेना, स्टाप कहां पर है. चलती गाड़ी से मत उतरना, आदि आदि.

इतनी सारी हिदायतों को लेकर वह घबरायी हुई बस स्टाप पर खड़ी हो जाती है. ठीक से दिखाई भी नहीं देता बस नंबर. पता नहीं लोगों को कैसे दिखता है. देखते ही दौड़ने लगते हैं. चश्मा बदलना पड़ेगा, ऐसा लगता है. अरे, सोचते-सोचते बस तो निकल भी गयी. अब अगली के लिए इंतजार करो. पता नहीं कब आयेगी. पूछे किसी से सुपर बाजार के लिए कौन-कौन नंबर इस समय जाती हैं. "भाई साहब, आपको मालूम है—सुपर बाजार कौन-कौन सी बस जाती हैं?" "पता नहीं हम उधर नहीं जा रहे." उस आदमी ने रुखाई से मुंह फेर लिया. अब किससे पूछें, पर्स से कागज निकाला जिस पर ध्रुव ने सारे नंबर लिखे हुए थे. उनको दोबारा मन ही मन याद किया. किसी ने कहा, अरे यहां से सभी उस तरफ तो जाती हैं. अच्छा, तब तो किसी में भी चढ़ जाओ, पहले क्यों नहीं मालूम किया होगा. वो आ भी गयी एक क्या नंबर है पूछ लेंगे बाद में. खड़ी रहोगी तो ये भी चल देगी. उसने सोचा और लपककर चढ़ गयी. "कहां जाना है?"

"सुपर बाजार."

"गलत गडडी में चढ़ गये हो तुसी, उतर जाओ." कंडक्टर ने लापरवाही से कहा और दूसरे यात्री की ओर बढ़ा. अरे, तो मुझे उतरने दीजिए—उसने आंचल ठीक करते हुए उतरने की चेष्टा की. गाड़ी तेज चल रही थी, उसकी समझ में न आया कैसे रुकवायी जाये. कहीं दूर जाकर छोड़ दिया तो इतना पैदल चलना पड़ेगा. कैसे बेखबर बैठे हैं सब लोग बस में जैसे कुछ हुआ ही नहीं. उनके लिए रोज ही ये तमाशा होता होगा. कई गलत बस में चढ़ते होंगे, कई बस के नीचे आ जाते होंगे. कितनों का हिसाब रखें बेचारे. उसकी बारीक, रुदन करती हुई सी आवाज को कोई सुन भी पाया होगा या नहीं. बस चलती गयी.

"रोको!" उसने सारी लज्जा को चीरते हुए चीखकर कहा, "मुझे उतरना है."

कई जोड़ी आंखें उसकी बेवकूफी पर हंसने लगीं. 'देखने में तो स्मार्ट लगती है पर इतना पता नहीं, जाना कहां है,' किसी ने कहा. कैसे लोग हैं, अपना हक समझते हैं, कुछ भी कह देने का.

बस थोड़ी दूर जाकर रुक गयी. ड्राइवर चिल्लाया, "हमारा बखत जाया करते हो." कुछ मनचले जोर से हंसे, कुछ महिलाएं फुसफुसायीं. रेलिंग का सहारा लेकर किसी तरह वो दरवाजे की ओर बढ़ी.

"जल्दी करो." सुनते ही मानो कूद पड़ने को तैयार हो गयी. उसके पांव लड़खड़ाये, पर्स नीचे गिर गया और पैसे बिखर गये. असहाय-सी इधर-उधर देखती चीजों को समेटने लगी. बस में बेसब्री फैल गयी. एक दुबला-पतला चश्माधारी आदमी उसकी तरफ बढ़ा और पर्स उठाकर देने लगा. चेहरे पर अत्यंत आत्मीयता और दर्द का भाव. "देखना, संभलकर उतरना." उसने कहा और जब तक वो सड़क पार जाकर खड़ी न हो गयी, असहाय सा देखता रहा.

'संभल कर उतरना,' उसके कानों में गूंजते रहे शब्द. पता नहीं क्यों ऐसा लगा, जैसे ध्रुव ने ही पीछे से आकर बाहों में भर लिया हो और आगे खाई में गिरने से बचा लिया. हां, कितनी बार ध्रुव ने ऐसा किया है. वो जनता है कि सुमन लापरवाह है, सोचती-समझती नहीं, देखकर सड़क पार नहीं करती. कई बार मोटर के नीचे आते-आते बची है. तब लपककर पीछे से ध्रुव ने क्रोधित होकर, कभी धक्का देते हुए, कभी हाथ झटककर उसे बचाया है. और किसे मेरे न रहने से फरक पड़ने वाला है. जो मेरे अपने हैं उन ही को न?

मानों बादलों के बीच से अचानक सूरज निकल आया हो, उसे जल्दी घर जाकर ध्रुव से आज की बात बताने की उतावली होने लगी. सुनो, आज बस में ऐसा हुआ. . . मतलब ये कि सुनो ध्रुव, तुम्हारे जैसे थोड़े से लोग ऐसे भी हैं इस शहर में जिन्हें (दूसरों) मुझ जैसों का दर्द है.

'संभल कर उतरना,' वह गुनगुनाती हुई अगली बस का इंतजार करने लगी. अब उसका डर चला गया था. और शहर कुछ कम डरावना लग रहा था. □

● **बी. 2/16 सुब्रमण्यम भारती मार्ग, नयी दिल्ली-110003**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

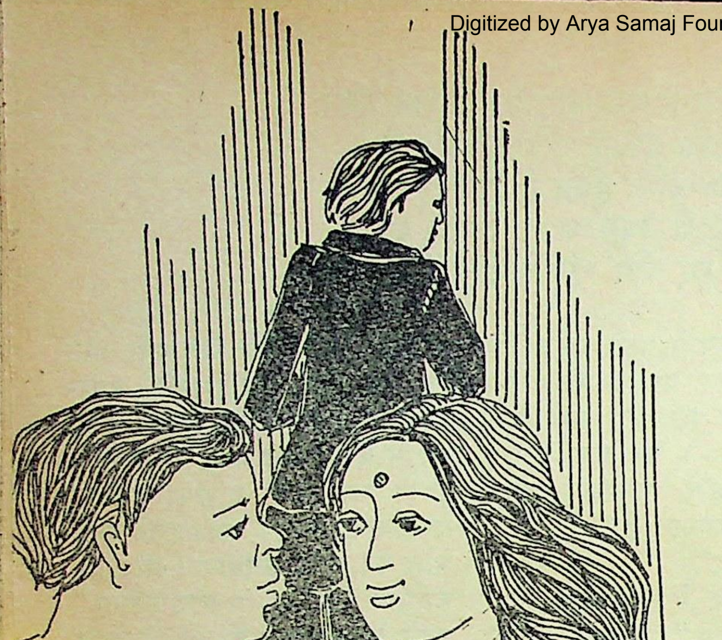

फोन पर वह जो कह लेती है, उसे या ठीक वैसा सामने नहीं कह पाती. ऐसा लगता था जैसे वह करीब-करीब रोनेवाली थी, "तुमसे बहुत सारी बातें करने का जी करता है. तुम मेरे बहुत प्यारे दोस्त हो. . .एक तुम्हीं हो, जिससे मैं सब कुछ कह सकती हूं, जिसके पास होकर हल्की हो सकती . . . आओगे?" मैं विशिष्ट बना दिया गया था, टालना मुश्किल हो गया.

पहुंचा तो उसके पास कुछ लोग बैठे थे. मुझे देखते ही उसकी आंखों में चमक आ गयी, खोया कुछ मिल जाने की खुशी. जल्दी ही उसने आगंतुकों को खिसका दिया.

"बाहर चलते हैं. . .यहां कोई न कोई आता रहता है."

वह उठ खड़ी हुई, अपना पर्स आदि संभालना शुरू कर दिया. जैसे ही हम बाहर निकलने के लिए कमरे के दरवाजे पर पहुंचे कि उधर से श्याम मोहन आ गया. . .एकदम फिल्मी इत्तफाक.

'हलो-हलो' हुई. . .मेरी भी. सुवर्णा का चेहरा एकाएक हल्का काला पड़ गया उस क्षण.

'आओ-आओ.' करती हुई वह मुड़ी, मेज का चक्कर लगाती हुई वापस अपनी कुर्सी पर पहुंची और कॉफी हेतु फोन लगाने लगी. फटाफट तीन कॉफी के लिए कह दिया. छिपने के लिए कैसे छोटी-छोटी चीजों की आड़ लेनी पड़ती है.

पानबहार

गोविंद मिश्र

कितने दिन सुवर्णा से बात किये बगैर गुजर गये. फोन करने का मन तो होता था, पर पेश्तर इसके कि भीतर बलवतीइ च्छा रूप ग्रहण करे. . . कोई जैसे उसके बनते आकार को फाड़ देता. सब फिर तितर-बितर. . .मैं अपना खालीपन ढोता चला जाता, जैसे वर्षों से आदत हो. उसकी तरफ से भी फोन नहीं आया, व्यस्त होगी, दस तरह के काम और दसियों तरह के लोग. आखिर उसका फोन आया.

"क्या हो गया. . .इतने दिनों बाहर थे क्या?

"नहीं."

"परेशान हो?"

"नहीं." दूर होते हुए भी भांप लेती है सुवर्णा.

"लगते तो हो."

"थोड़ा हो सकता हूं, पर कोई बात नहीं."

"कोई बात कैसे नहीं. . .मेरी वजह से हो?"

"नहीं, हम परेशान होते हैं तो सिर्फ अपने कारण."

"मिलोगे?"

"नहीं. . .अभी कुछ दिनों अपने आपसे ही जूझना चाहता हूं."

"देखो. . ." उस एक छोटे से शब्द में तब कितना दर्द सिमट आया था, दूसरे की कितनी चिंता. अजीब बात है—

कितनी छोटी दुनिया! वही लोग. . .एक तंग घेरे में मिनमिनाते हुए, स्थितियां भी घूम फिर-कर हू-ब-हू वही. उस रोज मैं श्याम मोहन वाली स्थिति में था. आने वाले कल को फिर यह हो सकता था कि वे निकलते होते, जब मैं घुसता. तब हम इस स्थिति को बचा ले गये थे, आज किसी अदृश्य शक्ति ने आदमी की चतुराई का बाजा बजा दिया था. अब भी मामला उतना गया-गुजरा नहीं था. हम तीनों साथ बैठकर कॉफी पी सकते थे. . .कॉफी में बात को बहा सकते थे, पर श्याम मोहन को बर्दाश्त नहीं हो रहा था. . .मेरा वहां होना उतना नहीं, जितना शायद हमारा साथ-साथ बाहर के लिए निकलते होना. वह बैठा नहीं, कुर्सी को हाथों से पकड़े थोड़ी देर खड़ा रहा. . .खोया-सा चेहरा, तनाव से खिंचा हुआ. उसने यह जताने की एक कमजोर-सी कोशिश की कि वह किसी को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते ही इधर चला आया था. जल्दी ही कुछ काम का बहाना करके चला गया.

सुवर्णा का चेहरा अब भी भकभकाया हुआ था. मैं सामान्य रहा था, अब स्थिति का कुछ-कुछ मजा भी लेने लगा था. . .क्योंकि आज मैं अंदर था और श्याम बाहर. श्याम की जगह मैं होता तो मेरी हालत बदतर होती.

"क्या सोच रहे हो?" उसने मेरी तरफ देखा.

"जो तुम सोच रही हो."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"श्याममोहन परेशान था." मैंने कहा.

"हां, समझ में नहीं आता, क्यों इतना परेशान हो गया."

ये मोटी-मोटी बातें वह नहीं समझती या फिर समझती तो है, पर [illegible] होने को अस्वीकार करती चली जाती है. . . जैसे इन [illegible] से बहुत ऊपर उठी हो. उठी भी हो सकती है, लेकिन तब उसका अपना चेहरा काला क्यों हो आया था?

"वह जानता है तुम्हारे बारे में. . .कि हम दोस्त हैं, मिलते-जुलते हैं." उसने आगे कहा.

फिर वही बात. . .वे ऊंचाइयां, जिन्हें हम छू लेते हैं. . . क्या इसे सिर्फ दोस्ती ही कहा जायेगा? आदमी और आदमी तो ज्यादा अच्छे दोस्त होते हैं, एक दूसरे को बेहतर समझते हैं. . .वे क्यों नहीं उन ऊंचाइयों तक उठ पाते? दोस्त सिर्फ एक लचीला शब्द है, इसलिए आज के अक्लमंद आदमी के लिए बेहद सुविधाजनक. हम दोस्त जरूर थे, पर उतने ही [illegible] दोस्ती की आपसी समझ का तत्व प्यार में घुला हुआ होता है. हो सकता है, उसकी तरफ से हमारा संबंध मात्र दोस्ती का ही हो. . .पर फिर हम दोस्ती की सीमाओं को पार करने लगते हैं, वह हिचकती क्यों नहीं, मुझे टोकती क्यों

"प्यार में कहीं न कहीं आदर्श का पुट भी तो होता है, तभी तो उसमें खींचने की ताकत होती है. वह आगे ले जाता है, सिर्फ बांधे नहीं बैठ रहता." जीवन के वास्तविक अर्थ की तलाश करते गोविंद मिश्र के शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास 'तुम्हारी रोशनी में' का चुना हुआ एक अंश और——

नहीं? निश्चित ही उसकी मर्जी के खिलाफ कोई उसके साथ एक सीमा के आगे नहीं जा सकता. आखिर आज भी कहीं तो रोके हुए ही है वह मुझे, दीपक और सोम को भी.

"इस तरह तुम पर कितना जोर पड़ता है, कभी महसूस किया? यह विभक्त व्यक्तित्व, तेजी से रोल्स बदल-बदल कर जीना. . .इसमें जो भागमभाग है, उसका क्या असर पड़ता है. . .कभी सोचा? तुम अपनी ताजगी तेजी से खो रही हो." मैंने कॉफी पीते समय कहा.

"मैं ऐसा नहीं मानती. विभक्त क्या है इसमें. . .तुमसे कुछ बता नहीं पायी, परेशान थी. पता नहीं मेरे साथ क्यों ऐसा होता है. . .मेरे लिए मुश्किल होता है लोगों को रोकना. . मैं किसी का दिल नहीं दुखाना चाहती."

मैं ऐसे बात कर रहा था जैसे कि उसका संरक्षक होऊं. . .शायद अनायास ऐसे रोल से चिपक गया था, जिससे खुद को आश्वस्त कर सकता कि श्याम मोहन से ज्यादा उसका नजदीकी मैं ही था. . .पर क्या यह वाकई था?

"जो यह दिल दुखाने की बात तुम करती हो तो क्या तुम इसे रोक पाओगी? जब तुम सभी से इतना अंतरंग होने की कोशिश करोगी?"

"आदमी के कैसे चार-चार बराबरी के अंतरंग दोस्त होते हैं." उसके स्वर में तीखापन और व्यंग्य दोनों थे.

"वह आदमी-आदमी की बात है. . .आदमी-औरत की नहीं. वहां भावनाएं आ बैठती हैं."

"क्यों आ जाती हैं. . .क्यों परेशान हो उठा श्याम मोहन? आय एम नाट सम वंस पर्सनल प्रापर्टी यार. . ."

वह एकाएक तैश में आ गयी. वह एक पढ़ी-लिखी महिला. . .अपने पैरों पर खड़ी, अपने बारे में सोचने-समझने की कूवत रखने वाली. . .और यहां लोग उसे एक तरह हांकने के लिए रस्सा लिये खड़े थे. पति को वह ऐसा कोई अधिकार दे भी दे, पर बाकी दूसरों की क्या हैसियत थी?

"देखो", वह कह रही थी, "तुमको आज मैंने यहां बुलाने की जिद की, यह तब जब तुम इतने अच्छे मूड में नहीं हो, मेरी तरफ से थोड़ा उचटे-उचटे भी हो——तो यह बता दूं कि तुम्हें मुझे वैसे लेना होगा, जैसी मैं हूं.. .और अगर तुम सचमुच यह सोचते हो कि तुम्हारे लिए यह मुश्किल है तो यही वह मुकाम है, जहां से हम अलग हो जायें. पीछे का इतना कुछ याद करने को तो रहेगा. आखिर हमने साथ-साथ कुछ बहुत अच्छे लम्हे जिये हैं. जहां तक मेरा सवाल है, मैं उन लम्हों को बहुत कीमती मानती हूं. . ."

फोन पर वह कितना पिघली-पिघली थी और यहां उस समय मेज के पार से अपनी शर्तें मुझ पर फेंक रही थी जैसे हम दो व्यापारी थे और जो किसी समझौते पर बहस कर रहे थे. चीजों को सीधा-सीधा लेना. . .तार्किक बातचीत. . . ग्रेसफुली पार्ट! पीछे सोचने को इतना रह जायेगा. . .उसकी भी क्या जरूरत? उसे वैसा ही लेना जैसे कि वह थी. . .यह उसके पति रमेश के लिए ठीक हो सकता है, जिसे हर हालत में उसके साथ रहना है. . .पर प्यार में कहीं न कहीं आदर्श का पुट भी तो होता है, तभी तो उसमें खींचने की ताकत होती है? वह आगे ले जाता है, सिर्फ बांधे नहीं बैठा रहता,

"आज मैं साफ-साफ बातें कर लेना चाहती हूं. अगर हममें से किसी को भी लगता है कि हम सिर्फ निबाह रहे हैं तो अलग हो जाना ठीक. जो इतने अच्छे से इतने दिनों चला, उसे क्यों घिसटने दें?"

"तुम क्या सोचती हो, हम एक समय में कई सौ ऐसे अंतरंग संबंध रख सकते हैं. . .या कि हर नये रिश्ते से पुराने को सिर्फ काटते चले जाते हैं, जाने-अनजाने?"

"क्यों नहीं रख सकते? हर संबंध के शेड्स अलग-अलग होते हैं. जिंदगी जो ऐसे संबंध बनाने का मौका देती है. . . उन मौकों को ठुकरा देना जिंदगी का अपमान करना है."

"तुम्हारे इस तरह नये-नये संबंध बनाते रहने से रमेश को जरूर शिकायत होती होगी?

"क्यों होगी? मैं उसे काफी देती हूं. शिकायत उसे हो, जिसका कुछ छीन कर मैं कहीं और दे आती होऊं. मैं रमेश या अपने घर की कीमत पर कुछ नहीं करती. अब इसका क्या किया जाये कि रमेश की जरूरतें ही इतनी कम हैं और मेरे पास इतना ज्यादा है देने को. . ."

"क्या एक साथ कई से प्यार भी किया जा सकता है?"

"हर संबंध प्यार ही तो नहीं होता. . .प्यार मुझे चाहिए भी नहीं. जीवन में बहुत मिला, कालेज के दिनों से ही. . .जिसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखो, मुझे प्यार करना चाहता था. अब मुझे एक दोस्त की तलाश है. तुम एक अच्छे दोस्त हो सकते हो, जिससे आदमी अपना सारा कुछ कहकर हल्का हो सकता है. प्यार में फिजूल का तनाव होता है, जिससे जिंदगी का कुछ भला नहीं होता, जबकि दोस्ती में हम वाकई बहुत कुछ ले दे सकते हैं."

क्या इस तरह हिसाबी-किताबी ढंग से जीवन को देखा जा सकता है? मैं सोच रहा था. . .प्यार इसीलिए व्यर्थ, क्योंकि उसमें तनाव है, पर हम किसी चीज का मूल्यांकन ऐसे ही तो करेंगे कि वह जीवन में क्या जोड़ता या घटाता है.

"तुम्हारी वह एक रिश्ते से दूसरे को काट देने वाली बात, ऐसा बिल्कुल नहीं है, मैं कुछ भी नहीं करती. कभी-कभी जोरों से मेरे भीतर धुंध उठती है. .पता नहीं क्या हूं मैं और मेरे साथ क्या होता है. . ."

अक्सर आदमियों का यह समाज सुवर्णा को कीचड़ भरा दलदल लगता है. . ऊपर से हरा-हरा लेकिन एक सीढ़ी नीचे ही घिन लगी काई, कूड़ा-करकट...कीचड़... सबका मिला-जुला कुछ. बड़े विश्वास से वह कहीं पैर रखती है कि खप्प से नीचे धंसता चला जाता है. एक लिस-लिस-सी चिपचिपाहट उसे घेर लेती है. हर आदमी में घूम-फिर कर एक ही कशमकश—उसे पालतू बना लेने की. श्याम अच्छा आदमी है, उम्र में उससे पंद्रह साल बड़ा. वह सोचती है कि श्याम के लिए यह काफी था कि सुवर्णा उसके पास हो . . .साथ-साथ किसी रेस्तरां में कॉफी वगैरह पी ली, कुछ बातें हो गयीं—योगा या राजनीति की, कभी सुवर्णा ने श्याम को थोड़ा मुग्ध जैसा होकर देख लिया, कभी थोड़ा छेड़खानी कर लेने दी. . .हो गया. सुवर्णा का क्या जाता है अगर इतने में ही कोई व्यक्ति अपनी उम्र के बावजूद नौजवान महसूस कर लेता है. . .यह क्या कि वह परेशान हो गया. कैसे वह सोच सकता है कि सुवर्णा सिर्फ उसी के साथ उठे-बैठे.

गोद में आ गिरे किसी छोटे-से फूल की तरह मासूम है यह अनंत. जरा-सी बात पर दुःखी हो जायेगा और फिर भीतर-ही भीतर घुटता रहेगा, बेवजह. उसका व्यक्तित्व जैसे उलझनों के रेशों से ही बुना हुआ है. बेहद ईमानदार है, अपनी उलझनों में भी ईमानदार. इन्हीं उलझनों के बीच कमल की कली की तरह फूटती चली आती है कोई उड़ान. . . सुवर्णा का वह झलकाती हुई, जो उसने कभी नहीं सोचा था. अनंत की भावनाएं उसे एक औरत की तरह नहीं, बल्कि एक व्यक्ति की तरह लेती हैं, उसके पूरेपन में. उसे उठाकर ऊपर ले जाती हैं. . .अनंत के साथ अक्सर ऐसा महसूस हुआ है कि सुवर्णा एक वीणा है, जिसमें अनंत तरह का संगीत निकलता है. . .जैसे सुवर्णा के व्यक्तित्व का वह पहलू खुल रहा है, जो अब तक नहीं खुला, वह सिर्फ वही नहीं है, जो दिखती है.

जिस दुनिया की बातें अनंत किया करता है, वह उसे छू नहीं पाती. अक्सर वह दुनिया अनंत की पकड़ से भी बाहर होती है. . .पर यह एहसास ही कि ऐसी कोई दुनिया है, यही जैसे जीवन को कितना वजनदार बना देता है. जिस अंतरंगता की बात अनंत करता है, डूबकर जिन ऊंचाइयों को कभी छू लेने का अपना अनुभव बनाता है. . .वह भी ऐसा करना चाहती है, पर हो नहीं पाता. अनंत को देखते हुए कभी-कभी लगता है कि वाकई खुद को बिखेर देना कितना आसान है. . . समेटना, समेटकर रखना कितना मुश्किल! भौतिक दुनिया, दुनियादारी में रहे आना कितना आसान है, लेकिन जिसे कोरी फिलासफी, हवाई खयालों की आसान दुनिया कहते हैं...वह दरअसल कितनी मुश्किल है. यह भी कि बाहर से जो उसकी अपनी जिंदगी अंधी दिखती है. . .शादी, नौकरी, घर में. . .वह दरअसल कितना बिखरी है और अनंत की जो बाहर से बिखरी, लावारिस दिखती है, वह भीतर से कितनी कसी है.

कभी-कभी उसे अनंत से डर लगता है. वह जैसे देखता है, बातें करता है. . .एक-एक शब्द महसूस करते हुए, उसमें भीगते हुए. ऐसे में वह अपना जीव पिघलते हुए महसूस करती हैं, कोमलता के झीने-झीने ताने-बाने में सिहर-सिहर उठती है. . .लगता है जैसे वह कैद होती जा रही है. . .भावनाओं की कैद. . .अगर उसने खुद को ढीला छोड़ा तो शिकार हो जायेगी. अमरीकी औरतें कहती भी हैं—प्यार आदमी की सबसे बड़ी साजिश है. कितना अजीब है यह कि श्याम से एकदम फर्क होते हुए भी अनंत कहीं उसकी तरह ही सोचता है. . . वही अधिकार. . .सिर्फ उसकी हुकूमत. . .लेकिन क्यों? □

——अगले अंक में तीसरा अंश : मान सरोवर——

उपन्यास और टेलीविज़न

▣ नथाली सर्रात

उपन्यास अखबारी विवरण नहीं है. उसमें अपने युग के प्रश्न और शंकाएं शक्ल बदलकर आते हैं. पहली दृष्टि में उन्हें पहचानना मुश्किल होता है. मेरे लिए यह मानना कठिन है कि उपन्यास की प्रासंगिकता नहीं रह गयी है या कि उसका भविष्य नहीं. मेरे विचार में तो अभिव्यक्ति के नये माध्यमों के बावजूद स्थिति में कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ा है. यह सही है कि बहुत से घरों में 'बुकशेल्फ' की जगह आज टेलीविजन ने ले ली है और लोगों की दिलचस्पियां बदल गयी हैं, मगर इससे उपन्यास के विकास में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं हुआ है. पहले भी रचना-साहित्य में थोड़े से लोग दिलचस्पी लेते थे और आज भी थोड़े से लोग लेते हैं. उपन्यासकार समूचे समाज की जिंदगी का हिस्सा कभी नहीं रहा.

टेलीविजन जिस रफ्तार से आया है, उसी रफ्तार से चला जायेगा. मनुष्य तथा मनुष्यता के द्वंद्व को व्यक्त करने का सार्थक माध्यम आज भी उपन्यास ही है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

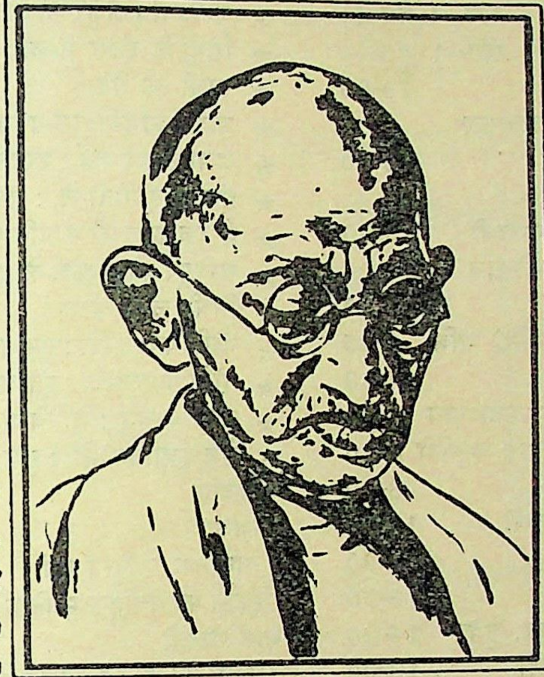

एकता – हमारा संकल्प

हम सभी एक ही परमेश्वर के उपासक हैं जिसकी हम अलग-अलग नामों से पूजा करते हैं। इसलिए हमें अपनी आधारभूत एकता को अवश्य बनाए रखना होगा तथा छुआ-छूत का त्याग करना होगा। इसके साथ ही साथ मनुष्यों के बीच ऊंच-नीच की भावना का त्याग भी अत्यन्त आवश्यक है।

बापू ने यही सीख हमें दी थी। उपेक्षित लोगों की सेवा में बापू ने स्वयं को पूरी तरह समर्पित कर दिया था। उनका संदेश था "सम्पूर्ण समाज की भलाई।"

सभी लोगों को सामाजिक न्याय प्रदान करना हमारा राष्ट्रीय लक्ष्य है जिसे विभिन्न विकास कार्यक्रमों और विशेषकर 20-सूत्री कार्यक्रम के माध्यम से प्राप्त करने के लिए हम सतत् प्रयत्नशील हैं।

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के शब्दों में देश के विकास के लिए बनाई जाने वाली योजनाओं का उद्देश्य देश के आर्थिक आधार को मजबूत करना है ताकि जितनी जल्दी हो सके अपने देश से हम गरीबी को उखाड़ फेंकें और समाज में व्याप्त आर्थिक पिछड़ेपन को दूर कर सकें।

पिछड़ापन दूर हो – हमारा निरन्तर प्रयास

84/141

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीपावली के शुभ अवसर पर प्रकाशन विभाग की अनुपम भेंट

★ भारत में अंग्रेजी राज खंड–1 44-00
ले : सुंदरलाल खंड–2 40-00
★ भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का खंड–1 16-00
इतिहास ले. : डा. ताराचंद खंड–2 40-00
खंड–3 35-00 खंड–4 (प्रेस में)
★ भारतीय शहीदों का परिचय खंड–1 45-00
★ गांधी कथा (चित्रों में) 10-00
ले. : एस. डी. सावंत तथा एस. डी. बादलकर
★ महात्मा गांधी जीवन और चिंतन 12-00
ले. : जे. बी. कृपलानी
★ बापू के आशीर्वाद. संकलन : टी. हिंगोराणी 60-00
★ भारतीय मुस्लिम त्यौहार और रीति-रिवाज
ले. : डा. माजदा असद 10-00
★ हिंदी हम सब की संकलन : डा. श्यामसिंह शशि 3-25
★ तुलसी के राम 4-50
संपादन : देवेंद्र भारद्वाज एवं रामेश्वर उपाध्याय
★ हिंदी एकता की कड़ी : ले. जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी 4-50
★ भारतेंदु हरिश्चंद्र 8-00
★ रवींद्रनाथ ठाकुर : ले. हिरण्मय बनर्जी 10-00
★ स्वराज्य के मंत्रदाता तिलक 11-00
★ अमर शहीद भगतसिंह 13-50
★ भीमराव अंबेडकर : ले. डा. डब्ल्यू. एन. कुबेर 14-00
★ एम. आर. जयकर-ले. : वी. बी. कुलकर्णी 18-00
★ स्वामी विवेकानंद : ले. वी. के. आर. वी. राव 18-00
★ सम्राट अशोक–ले. : वी. एस. मेधाकर 7-00
★ हमारे वैज्ञानिक-ले. : डा. जगजीत सिंह 9-00
★ नेताजी संपूर्ण वाङ्मय (तीन खंडों में)
खंड-1 (सजिल्द) 28-00 साधारण 22-00
खंड–2 सजिल्द 30-00 साधारण 25-00
खंड–3 (प्रेस में)
★ हमारे वन ले : सुदर्शन कुमार चेतन 9-50
★ दक्षिण भारत के मंदिर 18-00
★ चुनौती भरे वर्ष (प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के 1966 से 1969 तक के भाषणों का संग्रह)
सजिल्द 18-00 साधारण 15-00
★ जवाहर लाल नेहरू के भाषण (14 अगस्त, 1947 से जुलाई, 1961 तक के चुने हुए भाषण)
सजिल्द 16-00 साधारण 12-00
★ कर्नाटक-ले. : एम. पी. कृष्णाराव 9-00
★ अंडमान निकोबार द्वीप समूह 9-50
★ तमिलनाडु ले. : सी. वी. राघवन 8-00
★ अंतर्राष्ट्रीय खेल और भारत 13-00
★ 'खेल और खिलाड़ी-ले.' अजय भल्ला 7-00
★ भारत के पक्षी : ले. राजेश्वर प्रसाद नारायणसिंह 30-00
★ मोड़ावण-ले. : राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह 9-50
★ चिड़ियों की दुनिया 10-00
ले. : राजेश्वर प्रसाद नारायणसिंह
★ सिंह-ले. : रामेश वेदी 3-25
★ सुंदर लोक कथाएं (पांचवां संस्क:) 6-00
★ बाल महाभारत खंड–1 (चक्रव्यूह) 4-50
★ स्वर्ण हंस तथा अन्य जातक कथाएं ले. : उषा बाला 9-00
★ छोटी-छोटी चुभन-ले. : मालती शंकर 9-00
★ रवींद्रनाथ ठाकुर की बाल कहानियां ले. : देवलीना 12-00
★ सिंहों के जंगल में-ले. : रामेश वेदी 13-00
★ साधी का बेटा 11-50
★ भारत का इतिहास-बच्चों के लिए : ले. शीला घर 13-00
★ अन्ना साहब कर्वे (रंगीन चित्रों में) 4-50
★ हंसते हुए मोती-ले. : चंद्रदत्त इंदु 8-00
★ वैदिक काल की कहानियां : ले. डा. शुभा शर्मा 6-00
★ सरीसूप की कहानी-ले. : डा. शिवतोष दास 10-00
★ सिंधी लोक कथाएं 12-00
★ नीति कथाएं-ले. : कुसुम कुमार 10-00
★ नीति कथाएं-ले. : शीलाधर 10-00
★ सुंदर वस्तुएं : ले. विद्या दहीजिया 12-50
★ जैन कहानियां-ले. : सुधा जैन 10-00

पत्रिकाएं	वार्षिक चंदा	द्विवार्षिक चंदा	त्रिवार्षिक चंदा
आजकल (आधुनिक साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक मासिक)	15–00	27–00	37–00
बाल भारती (बच्चों की सचित्र, रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक संपूर्ण मासिक पत्रिका)	15–00	27–00	38–00
कुरुक्षेत्र (ग्रामीण पुनर्निमाण पर उत्कृष्ट मासिक पत्रिका)	15–00	27–00	38–00
योजना (पाक्षिक) (देश के बहुमुखी विकास एवं योजना की निष्पक्ष समीक्षा करने वाली पत्रिका)	30–00	53–00	75–00
भगीरथ (सिंचाई व बिजली के विकास पर त्रैमासिक पत्रिका)	5–00	9–00	12–00

उपरोक्त पत्रिकाओं में से किसी भी एक पत्रिका का ग्राहक बन जाने पर पुस्तकों की खरीद पर 10 प्र. श. की छूट।

विभिन्न विषयों पर भारत की सभी भाषाओं में उपयोगी पुस्तकें उपलब्ध हैं। निःशुल्क सूची-पत्र मंगाइए।

डाक-खर्च मुफ्त

25 रुपये से कम के आदेश पर पंजीकरण शुल्क (रजिस्ट्रेशन फी) अतिरिक्त भेजना होगा। पुस्तकें स्थानीय विक्रेताओं से लें अथवा सीधे हमें लिखें :–

व्यापार व्यवस्थापक

विक्रय केन्द्र : प्रकाशन विभाग

★ **पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001**
★ **सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001**
★ **बिहार स्टेट को-आपरेटिव बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004**
★ **10-बी स्टेशन रोड, लखनऊ-226001**

डीएवीपी 84/150

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकों की बढ़ती कीमतों के खिलाफ एक कारगर कदम

नये वर्ष के उपहार के साथ डाक व्यय में पूरी छूट

राजकमल पेपरबैक्स

उत्कृष्ट साहित्य कलात्मक रूपाकार

सस्ता इतना कि आप खरीद सकें

नये वर्ष पर एक दुर्लभ उपहार

महाकवि कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् का
राजा लक्ष्मणसिंह कृत सरस गद्य-पद्यानुवाद

शकुन्तला नाटक

20 कलात्मक चित्रों से अलंकृत

अगर आप
"आलोचना पुस्तक परिवार"
के सदस्य नहीं हैं तो
आलोचना पुस्तक परिवार
की सदस्यता भी निःशुल्क

उपहार के लिए निम्नांकित सूची में से 60/- मूल्य की पुस्तकों का आदेश यथाशीघ्र भेजें

उपन्यास

अनामदास का पोथा / हजारीप्रसाद द्विवेदी / 12.00
बाणभट्ट की आत्मकथा / हजारीप्रसाद द्विवेदी / 15.00
मैला आँचल / फणीश्वरनाथ रेणु / 17.00
राग दरबारी / श्रीलाल शुक्ल / 18.00
आधा गाँव / राही मासूम रज़ा / 17.00
वे दिन / निर्मल वर्मा / 11.00
एक चिथड़ा सुख / निर्मल वर्मा / 10.00
मित्रो मरजानी / कृष्णा सोबती / 6.00
डार से बिछुड़ी / कृष्णा सोबती / 6.00
तमस / भीष्म साहनी / 15.00
बसन्ती / भीष्म साहनी / 10.00
रेखा / भगवतीचरण वर्मा / 15.00
सुहाग के नूपुर / अमृतलाल नागर / 12.00
कुरु-कुरु स्वाहा / मनोहरश्याम जोशी / 13.00
अँधेरे बन्द कमरे / मोहन राकेश / 18.00
लोग / गिरिराज किशोर / 11.00
शह और मात / राजेन्द्र यादव / 13.00
रुकोगी नहीं राधिका / उषा प्रियम्वदा / 6.00

नंगा शहर / भीमसेन त्यागी / 6.00
सुखा पत्ता / अमरकान्त / 12.00
अठारह सूरज के पौधे / रमेश बक्षी / 6.00
आधा पुल / जगदीशचन्द्र / 12.00
एक चूहे की मौत / बदीउज़्ज़माँ / 11.00
अध चाँदनी रात / गुरदयालसिंह / 10.00
अजनबी / आल्बेयर कामू / 6.00
उस रात के बाद / ग्रेहम ग्रीन / 12.00
हिरोशिमा के फूल
वियतनाम को प्यार / एदिता मोरिस / 11.00
और मौत मर गयी / उषा शेठ / 8.00
बीसवीं सदी का जिन्न / लाज़ार लागिन /6.00

कहानी

प्रतिनिधि कहानियाँ / फणीश्वरनाथ रेणु / 10.00
प्रतिनिधि कहानियाँ / भगवतीचरण वर्मा / 10.00
प्रतिनिधि कहानियाँ / अमरकान्त / 10.00
प्रतिनिधि कहानियाँ / मन्नू भण्डारी / 10.00
प्रतिनिधि कहानियाँ / ज्ञानरंजन / 10.00

व्यंग्य

प्रतिनिधि व्यंग्य / हरिशंकर परसाई / 10.00

नाटक

पगला घोड़ा
एवम् इन्द्रजित / बादल सरकार / 10.00
बहू / अक्स पहेली / त्रिपुरारी शर्मा / 10.00

कविता

प्रतिनिधि कविताएँ / मुक्तिबोध / 10.00
प्रतिनिधि कविताएँ / सर्वेश्वरदयाल सक्सेना / 10.00
प्रतिनिधि कविताएँ / फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ / 10.00
प्रतिनिधि कविताएँ / अमृता प्रीतम / 10.00

संस्मरण

अपनी खबर / पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' / 6.00
मीना बाजार / सआदत हसन मण्टो / 6.00

शोधालोचना

दूसरी परम्परा की खोज / डॉ. नामवरसिंह / 10.00

**आलोचना पुस्तक परिवार के सदस्य बनकर
लागत-मात्र मूल्य पर घर-बैठे श्रेष्ठ पुस्तकें मँगाइए**

राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110 002
शाखा : साइंस कालिज के सामने, पटना - 800006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों की बचत एवं सुविधा के लिए

हमें अक्सर पाठकों से शिकायती-पत्र मिलते हैं कि उन्हें 'सारिका' अपने बुक स्टॉल पर मिल नहीं पाती, उनके पहुंचने से पहले ही सारी प्रतियां बिक जाती हैं. पाठकों की सुविधा के लिए हम उन्हें सलाह देंगे कि वे अपना शुल्क आज ही ड्राफ्ट/मनीआर्डर के रूप में नीचे दिये गये कूपन के साथ हमें भिजवा दें ताकि उन्हें 'सारिका' डाक से नियमित भिजवायी जा सके.

शुल्क की रियायती दरें :—

वार्षिक : 80 रुपये

अर्धवार्षिक : 41 रुपये

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह माह के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम ....

पता. ....

....

....

....

हस्ताक्षर ....

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें :
प्रसार अधिकारी,
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुर शाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

अनाला अंक

क्या स्त्री का पुरुष के हाथों पराजित होना प्रिय है?...

या फिर यह महज सोच है पुरुष प्रधान समाज की?. . . पढ़िए, समाज, सोच और स्त्री के त्रिकोण को रेखांकित करती विभिन्न रचनाएं—

उपेंद्रनाथ अश्क, वल्लभ डोभाल, प्रदीप पंत, सुरेंद्र मनन, सुरेंद्र अरोड़ा, इंदु जैन, पृथ्वीराज मोंगा, प्रेमचंद सहजवाला, वीरेंद्र जैन की सशक्त कहानियां

- **युवा-लेखन कहानी प्रतियोगिता**
  —कुमार संभव की कहानी—फर्जी तंत्र
- **संजोग वियोग की कहानी न उठा**
  —गोविंद मिश्र का उपन्यास अंश
- **मैं जड़ नहीं होना चाहता!**
  —स्वर्गीय डा. इंद्रनाथ मदान से फूलचंद मानव की साहित्य और जीवन से जुड़ी विस्तृत और अंतरंग बातचीत
- **मेरा कोई बाड़ा नहीं!**
  —स्वर्गीय डा. इंद्रनाथ मदान से आलोचकों और आलोचना की स्थिति पर कमलेश भारतीय की बातचीत
- **जबान अहले-जबां में, मर्ग खामोशी मगर . . .**
  —सारिका-अंक : 357 में 'पीढ़ियां : आमने-सामने' के अंतर्गत प्रकाशित—नामवर सिंह, राजेंद्र यादव, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, मृणाल पांडे के बीच हुई बातचीत पर डा. निर्मला जैन का बेबाक विवेचन.

● तुलसीदास चंदन घिसें! ● भरतमुनि के वंशधर ● और भुलाये न बने ● तस्वीर बोलती है ● लघुकथाएं ● गजलें

सारिका

16-30 नवंबर, 1984

शीघ्र प्रकाश्य
दो संग्रहणीय विशेषांक

भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथा-विशेषांक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar